THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

* श्रीनेमिनाथाय नमः *

जिनवाणी संग्रह

अर्थात्

बृहद् जैन सिद्धान्त संग्रह।

सम्पादक—

व्याकरण रत्न, पं० सतीशचन्द्र जैन, न्यायतीर्थ।

पं० कस्तूरचंद छावड़ा "विशारद"

प्रकाशक—

दुलीचंद पन्नालाल, परवार

मालिक—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,

बड़ाबाजार, कलकत्ता।

द्वितीय संस्करण १५०० | दीपावली २४५२ | मूल्य सवा दो रुपया।

प्रकाशक—
दुलीचंद पन्नालाल परवार
मालिक – जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,
पो० ब० ६७४८ कलकत्ता।

प्रथम खंड हनुमान प्रेसमें तथा द्वितीय खंड
लक्ष्मीप्रिंटिंग् वर्क्स प्रेसमें छपा है।

मुद्रक :—
भोलानाथ बर्म्मन
लक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स,
३८०, अपरचितपुर रोड, कलकत्ता।

प्रकाशकीय वक्तव्य !

बंधुओ ! हम आपकी गहरी सहानुभूतिका अनुभव करते हुए सिर्फ तीन हो महिनेमें यह द्वितीयावृत्ति लेकर सेवामें उपस्थित होरहे हैं। हमें स्वप्नमें भी ऐसी आशा नहीं थी कि आप लोग इतना प्रेम दिखावेंगे। सिर्फ २-२॥ महिनेमें प्रथमावृत्ति खप गई, यह आनंद की बात है। इस नई आवृत्तिमें हमने अरहंतपाशा केवली, शिखर महात्म्य, विद्यावती कृत अनेक पद, संसार दुःख दर्पण, अठारह नाते की कथा आदि और भी बहुतसे आवश्यक विषयोंका समावेश कर दिया है। इससे संग्रह की महत्वता और भी बढ़ जाती है।

जिन जिन महाशयोंके प्रकाशित विषयोंका हमने इसमें समावेश कर दिया है उन उन महाशयोंके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

श्रीमान् परोपकारी बन्धु बा० छोटेलाल जी जैन एम० आर० ए० एस० ने सदैवकी भांति अपनी शुभ सम्मति द्वारा हमें पूर्ण सहायता दी है इस महिती कृपाके लिये कृतज्ञ हैं।

सम्पादक महाशयोंको भी हम धन्यवाद दिये वगैर नहीं रह सक्ते कि जिनने अपना अमूल्य समय दे कर हमें उपकृत किया है।

प्रथमावृत्ति की आलोचना जैनमित्र, जैनजगत, परवार बन्धु, खंडेलवाल जैन हितेच्छु आदि प्रसिद्ध पत्रोंने विस्तृत रूपसे खूब ही उत्तम की थी इस कृपाके लिये भी कार्यालय उनका आभारी है। आशा है आप सज्जन इसी तरह कृपा दृष्टि रखेंगे।

दीपावली—वीर सं० २४५२ } निवेदक—
मूलचन्द पन्नालाल, देवरी सागर

बड़ाभारी सुभीता ।

१) एक रुपया प्रवेश फी जमा करादेने से हम अपने छपाये तमाम ग्रन्थ पौनी कीमत में दिया करते हैं। नवीन ग्रन्थ जब तैयार होता है बराबर १५ दिन पहिले खबर दी जाती है, जिन्हें नहीं लेना होता है उनका पत्र आनेसे नहीं भेजा जाता। अब बताइये कितना लाभ है ?

आजही पत्र लिखकर ग्राहक बन जावें अगर आप स्वयं ग्राहक हों तो अपने इष्ट मित्रों को बनाने की कृपा करें।

"मैनेजर"

समर्पण

जैनधर्म और जैन जातिके परम उपकारी श्रीमान् जैनधर्म-
भूषण, धर्मदिवाकर श्रीब्रह्मचारी शीतलप्रशादजी
सम्पादक—"जैनमित्र और वीर"
के :—

कर कमलों में तुच्छ भेंट यह सादर अर्पण करता हूं।
जैनधर्मके नायक पर यह प्रेम पुष्प सर धरता हूं॥
प्रेम आपसे बाल वृद्ध, गुण मुग्ध, सभ्य जन करते हैं।
धर्म स्वरूप समझ कर सच्चा सत्य सौख्य यश भरते हैं॥
हे शांत हृदय! अरु पूज्यवर कृपया इसे अपनाइये।
कर कमलों में ग्रहण कर सत्य मार्ग दिखलाइये॥

विनीत—
"सम्पादक"

मंदिरों के लिये बड़ाभारी सुभोता।

काश्मीरी केशर।

पवित्र केशर हमारे यहां हर समय तैयार रहती है बहुत ही कम नफा लेकर भेजी जाती है एक बार परीक्षा अवश्य कीजिये। ३) तोला।

स्फटिक की मालायें।

चमकती हुई सुन्दर मालायें, हमारे यहां से मंगाईये। १) की ४ तथा २५) रुपया सैकड़ा।

दशांग धूप।

पवित्रता के साथ तैयार की हुई यह दशांग धूप बहुत ही उत्तम और सुगंधित है दाम ५) रुपया सेर आधपाव का डब्बा ।।≤)

हमारा पता—

जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,

बड़ाबाजार—कलकत्ता।

* श्रीपरमात्मने नमः *

जिनवाणी संग्रह

पहला अध्याय

१ णमोकार मंत्र

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

इस णमोकार मन्त्रमें पांच पद, पैंतीस अक्षर, अट्ठावन मात्राएं हैं ॥

२ णमोकार मन्त्रका माहात्म्य

णमोकार है मंत्र सर्व पापोंका हर्ता।
मंगल सबसे प्रथम यही शुचि ज्ञान सुकर्ता ॥
संसार सार है मन्त्र जगतमें अनुपम भाई।
सर्व पाप अरिनाश मंत्र सबको सुखदाई ॥ १ ॥
संसार छेदके लिये मन्त्र है सर्व प्रधाना।
विषको अमृत करे जगतने यह सब माना ॥
कर्म नाश कर ऋद्धि सिद्धि शिव सुखका दाता ॥
मंत्र प्रथम जिन मंत्र सदा तू क्यों नहिं ध्याता ॥२॥

सुर सम्पत्ति प्रधान मुक्ति लक्ष्मी भी होती।
सर्व विपत्ति विनाश ज्ञानकी ज्योती होती॥
पशु पक्षी नर नारि श्वपच्च जो धारण करते।
ज्ञान, मान, धन, धान्य और सुख सम्पति भरते।
जीवन्धर थे स्वामि एक जन करुणा धारी।
कुत्तेको दे मन्त्र शीघ्र गति भली सुधारी॥
मंत्र प्रभाव स्वर्गमें जाकर सब सुख पाये।
ध्याये जो जन उसे सर्व सुख हों मनचाये॥४॥

"सतीश"

३ पञ्च परमेष्ठीके नाम

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु।
ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा। ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

नोट—अ सि आ उ सा नाम पञ्च परमेष्ठीका है। ॐ में पञ्च परमेष्ठीके नाम ही २४ तीर्थङ्करोंके नाम गर्भित हैं।

४ चौबिस तीर्थंकरोंके नाम

१ ऋषभदेव,	२ अजितनाथ,	३ संभवनाथ,
४ अभिनन्दननाथ,	५ सुमति नाथ,	६ पद्मप्रभ,
७ सुपार्श्वनाथ:	८ चन्द्रप्रभ,	९ पुष्पदन्त,
१० शीतलनाथ,	११ श्रेयांशनाथ,	१२ वासुपूज्य,
१३ विमलनाथ,	१४ अनन्तनाथ,	१५ धर्मनाथ,
१६ शांतिनाथ,	१७ कुन्थुनाथ,	१८ अरनाथ,
१९ मल्लिनाथ,	२० मुनिसुव्रतनाथ,	२१ नमिनाथ,
२२ नेमिनाथ,	२३ पार्श्वनाथ,	२४ वर्द्धमान।

श्रीसमन्तभद्र स्वामी विरचित।

श्रीरत्नकरण्ड श्रावकाचार

नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्यादर्पणायते ॥ १ ॥
देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ २ ॥
सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥ ३ ॥
श्रद्धानं परमार्थानां माऽप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥
आप्तनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥
क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मांतकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥
परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥ ७ ॥
अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥ ८ ॥
आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥
विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥

इदमेवेदृशमेव तत्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥ ११ ॥
कर्मपरवशे सांते दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥ १२ ॥
स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सागुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥ १३ ॥
कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥
स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥
दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ १६ ॥
स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥
अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ १८ ॥
तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतीस्मृता।
उद्दायनस्तृतीये ऽपि तुरीये रेवती मता ॥ १९ ॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥ २० ॥
नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥ २१ ॥
आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।

गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥
वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥
सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्त्तवर्त्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥
ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥
स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥ २६ ॥
यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥ २७ ॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥
श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात् ।
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥ २९ ॥
भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ॥ ३० ॥
दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते ॥ ३१ ॥
विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ ३२ ॥
गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥ ३३ ॥

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजं ।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निश्शेषं ॥ १२५ ॥
शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।
सत्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥ १२६ ॥
आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥ १२७ ॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।
पंचनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ १२८ ॥
जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः ।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥ १२६ ॥
निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।
निष्पिवति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥ १३० ॥
जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥ १३१ ॥
विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखं ॥ १३२ ॥
काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसम्भ्रान्तिकरणपटुः ॥ १३३ ॥
निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते ।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥ १३४ ॥
पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः ।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥ १३५ ॥
श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।

स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ १३६ ॥
सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्वपथगृह्यः ॥ १३७ ॥
निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥ १३८ ॥
चतुरावर्त्त त्रितयश्चतुष्प्रणामः स्थितो यताजातः ।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥ १३९ ॥
पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥ १४० ॥
मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥ १४१ ॥
अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम् ।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥ १४२ ॥
मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धिबीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः । ॥ १४३ ॥
सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥
बाह्येषुदशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥ १४५ ॥
अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥ १४६ ॥
गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७॥

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥ १४८ ॥
येन स्वयं वीतकलंकविद्या दृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावम्।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषुविष्टपेषु ॥१४९॥

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १५० ॥

६ द्रव्यसंग्रह

जीवमजीवं दव्वं जिनवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं। देविन्दविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥ जीवो उवओगमओ अमुत्तिकत्ता सदेह परिमाणो। भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोढगई ॥ २ ॥ तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणोय। ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥ उवओगो दुवियप्पो दंसण णाणं च दंसणं चदुधा। चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥ णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदि ओही अणाणणाणाणि। मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥५॥ अट्ठचदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं। ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥ वण्ण रस पञ्च गंधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे। णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥ पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो। चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥ ववहारा सुहदुक्खं

पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि । आदाणिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ६ ॥ अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा । असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असङ्खदेसो वा ॥१० ॥ पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरेइंदी । विगतिग चदुपञ्चक्खा तसजीवा होंति संखादि ॥११॥ समणा अमणा णेया पञ्चेंदिय णिम्मणापरे सव्वे । बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदराय ॥१२॥ मग्गणगुणठाणेहिं य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया । विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १३॥ णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा । लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥ १४ ॥ अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं । कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥ १५ ॥ सद्दो बन्धो सुहमो थूलो सण्ठाणभेदतमछाया । उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥ गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी तोयं जह मच्छाणं अच्छंताणेव सो णेई ॥ १७ ॥ ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी । छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥ अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं । जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १९ ॥ धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये । आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥ दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो । परिणामादी लक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥ लोयायासपदेसे इक्केक्के जे ट्ठिया हु इक्केक्का । रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥ एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं । उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पञ्च अत्थिकाया दु ॥२३॥ संति

जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा। काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥ होंति असंखा जीवे धम्मा-धम्मे अणंत आयासे। मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥ एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि। बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥ जावदियं आयासे अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं। तं खुपदेसं जाणे सव्वाणु-ट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥ आसवबंधणसंवरणिज्जर मोक्खा सुपुण्णपावा जे। जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥ आसवदि जेण कम्मं परिणामेणाप्पणो स विण्णेओ। भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥ मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहाद-ओऽथ विण्णेया। पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥ णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि। दव्वासवो स णेओ अणेयभेदो जिणक्खादो ॥३१॥ बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो। कम्मादपदेसाणं अण्णोण्ण-पवेसणं इदरो ॥३२॥ पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो। जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥ चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ। सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणेअण्णो ॥ ३४ ॥ वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणु-पिहा परीसहजओ य। चारित्तं बहुभेयं णायव्वा भावसंवरविसे-सा ॥३५॥ जहकालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण। भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥ सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो। णेओ स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥३७॥ सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं

न्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकांतासुव-
र्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्वयोः
पूर्वा पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरि-
वृता गंगासिन्ध्वाद्यो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनश-
तविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागायोजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुणद्विगु-
णविस्तारा ॥२५॥ वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः उत्तरा दक्षिणतुल्याः॥२६
भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्
॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थि-
तयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः॥२९॥तथोत्तराः॥३०॥विदेहेषु
सङ्ख्येयकाला ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशत.
भागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥प्राङ्मानु
षोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्याम्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतैरावतविदेहाः
कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिप-
ल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥
दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्रसामानिक-
त्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालनीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्वि-
षिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्याव्यन्तरज्योतिष्काः
॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः
स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः॥ ९ ॥ भवनवासि-
नोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥
व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः

॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्ना कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्र महाशुक्र शतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वित्रिशेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालयालौकान्तिकाः ॥ २४ ॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिकमनुष्येभ्यःशेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशिभिरधिकानि तु ॥३१॥आरणाच्युतादूर्द्धमेकैकेन नवसुग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरापल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तरा ॥ ३४ ॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परापल्योपममधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अजीवकाया धर्म्माधर्म्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आआकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ असङ्ख्येयाः प्रदेशाः धर्म्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥ सङ्ख्येयासङ्ख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥ नाणोः ॥ ११ ॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥ धर्म्माधर्म्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असङ्ख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥ प्रदेशसंहार विसर्प्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥ गति स्थित्युपग्रहौ धर्म्माधर्म्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥ आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुखदुखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥ वर्त्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥ अणवःस्कन्धाश्च ॥ २५ ॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ भेदादणुः ॥ २७ ॥ भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥ सद्द्व्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥ अर्पितानर्पित सिद्धेः ॥ ३२ ॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ नजघन्यगुणानाम् ॥ ३४॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥ गुणपर्य्ययवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥ ३९ ॥ सोऽनन्तसमयः ॥४० ॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

कायवाङ्मनः कर्म्मयोगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ २ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिके-र्य्यापथयोः ॥४॥ इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥ तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्य विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥ आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्च तुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निवर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥ दुःखशोकतापाक्रन्दनबधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥ भूतव्रत्यनुकम्पादान सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलिश्रुतसङ्घधर्म्म देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया-तैर्यग्यानस्य ॥ १६ ॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभा-वमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंय-मसंयमासंयमाऽकामनिर्ज्जराबालतपांसि दैवस्य॥२०॥सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौशक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्य करणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥ परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नोचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौचोत्तरस्य ॥ २६ ॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥ ४ ॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ ५ ॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरण–वृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ ७ ॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्ज्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥ दुःखमेव वा ॥ १० ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥ असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥ मूर्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥ अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥ अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥ दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥ शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्य-

महर्षिर्महितोदयः ॥ ४ ॥ महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः । महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥महाभवाब्धिसंतारिर्महा-मोहाद्रि सूदनः । महागुणाकरः क्षांतो महायोगेश्वरः शमी ॥ ६ ॥ महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः । महाकर्मारिहात्मज्ञो महा-देवो महेशिता ॥७॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः । असंख्ये-योऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥ ८ ॥ सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः । दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिपरमः परमोदयः । प्रक्षीणबंधकामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥ प्रणवः प्रणयः प्राणः प्रणादः प्रणतेश्वरः प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥ आनन्दोनंदनो नंदो वन्द्योऽनिंद्योऽभिनन्दनः । कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः ॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥६॥

असंस्कृतः सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत् । अंतकृत्कांतगुःकां-तश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥१॥ अजितो जितकामारिरमितोऽमितशास-नः । जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः ॥२॥ जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः । महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥ नाभेयो नाभिजो जातः सुव्रतो मनुरुत्तमः । अभे-द्योऽनत्ययोऽनश्वानधिकोऽधिगुरुःसुधीः ॥४॥ सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः । विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥ क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी । अग्राह्यो ज्ञाननि-ग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥६॥ सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुरा-ननः । श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥ सत्यात्मा सत्य-विज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः

सत्यपरायणः॥८॥ स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयांन्दवीयान्दूरदर्शनः। अणो रणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥ सदायोगः सदाभोगः सदा तृप्तः सदाशिवः। सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥ सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्। सुगुप्तागुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥७॥

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः। मनीषिधिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥ १ ॥ नैकरूपो नयस्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत्। अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥ २ ॥ ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भःप्रभास्वरः। पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥ ३ ॥ लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता। मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥ धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः। धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥ अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः। सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥ सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः। अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥ ७ ॥ वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः। प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मङ्गलं मलहानघः ॥ ८ ॥ अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः। अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानेकतत्त्वदृक् ॥ ९ ॥ अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः। सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥ १० ॥ शंकरः शवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः। अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः॥ ११ ॥ त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदयः। त्रिजगत्पतिपूजाङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥ १२ ॥ इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः । सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥ पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वाङ्गविस्तरः। आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२। युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः। कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥ कल्याणप्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः । विकलङ्कः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः॥४॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः। जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥ ५ ॥ चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः । सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६॥ आदित्यवर्णो भर्माभःसुप्रभः कनकप्रभः । सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७॥ तपनीयनिभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनलप्रभः । संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः॥८॥ निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः । हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९। द्युम्नभाजातरूपाभो दीप्तजाम्बूनदद्युतिः । सुधौतकलधौतश्रीःप्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥ शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः। शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥ ११ ॥ शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः ।शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः ॥ १२ ॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः । सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥६॥

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः निष्कञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥ तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः । तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥२॥ जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः । कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोका-

लोकप्रकाशकः ॥३॥ अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूकःप्रभामयः। लक्ष्मी-
पतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥ मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिता-
क्षो जितमन्मथः। प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥
मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः। आप्तो वागीश्वरः श्रेयां-
ञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥ ६ ॥ प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्व-
भाववित्। सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥ श्रीशः श्री-
श्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्करः। उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो
लोकवत्सलः ॥ ८॥ लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः। धीर-
धीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥ ९ ॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो
यतिर्नियमितेन्द्रियः। भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥ १० ॥
समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः। कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हे-
यादेयविचक्षणः ॥११॥ अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥ १२ ॥ समन्तभद्रः शां-
तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः। सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुर्धर्मदेशकः
॥१३॥ शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः। धर्मपालो जग-
त्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥ १० ॥

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः। समुच्चितान्यनुध्या-
यन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥ १ ॥ गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गो-
चरो मतः। स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भवेत् ॥२॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्। त्वमतोऽसि जग-
द्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥३॥ त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्वि-
रूपोपयोगभाक्। त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गं स्वोत्थानन्तचतुष्टयः ॥ ४ ॥

त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः । षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥ दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः । दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ॥ ६ ॥ युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया । भवन्तं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥ ७ ॥ इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः । यः स पाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ॥८॥ ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः । पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥६॥

इति भगवज्जिनसेनाचार्यविरचितादिपुराणान्तर्गतं
जिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ।

१२ एकीभावस्तोत्रम् ।

(श्रीवादिराजप्रणीतम्)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति । तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरुन्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोपरस्तापहेतुः ॥ १ ॥ ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वान्तविध्वंसहेतुं त्वामेवाहुर्जिनवर ! चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः । चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥ आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमन्त्रैर्भवन्तम् । तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्निष्कास्यन्ते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ॥ ॥ प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम् । ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टस्तत्किं चित्रं जिन ! वपुरिदं

कुंथगिरि सोय ॥ कुलभूषण देशभूषण नाम। तिनके चरणन करूं हू प्रणाम ॥१७॥ जसरथराजाके सुत कहे। देशकलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटि शिला मुनि कोटिप्रमान। वंदन करूं जोर जुगपान ॥ १८ ॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद। रेसंदीगिरि नयनानन्द ॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते वंदौं नित धरमजिहाज ॥ १९ ॥ तीन लोकके तीरथ जहां। नित प्रति वंदन कीजे तहां। मन वच कायसहित सिर नाय। वंदन करहिं भविक गुण गाय ॥२०॥ संवत सतरहसौ इकताल। अश्विन सुदि दशमो सुविशाल ॥ "भैया" वंदन करहि त्रिकाल जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥ २१ ॥

इति निर्वाणकांड भाषा।

१६ महावीराष्टकस्तोत्रम्।

शिखरिणी छन्दः।

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिद्‌चितः। समं भांति ध्रौव्य-व्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिताः ॥ जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानु-रिव यो। महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥ अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं। जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ॥ स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला। महावीर० ॥२॥ नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं। लस-त्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां ॥ भवज्ज्वाला शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि। महावीर० ॥ ३ ॥ यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह। क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः ॥ लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा। महावीर० ॥४॥ कनत्स्वर्णा-

भासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो । विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः ॥ अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिः । महावीर० ॥ ५ ॥ यदीया वाग्गङ्गा विविधनयकल्लोलविमला । बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ॥ इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता । महावीर० ॥ ६ ॥ अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः । कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः ॥ स्फुरन्नित्यानन्द प्रशमपदराज्याय स जिनः । महावीर० ॥ ७ ॥ महामोहातङ्कप्रशमनपराकस्मिकभिषग् । निरापेक्षो बन्धुर्विदितमहिमा मङ्गलकरः ॥ शरण्यः साधूनां भवभयभृत्तामुत्तमगुणो । महावीर० ॥८॥ महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम् । यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥ ९ ॥

१७ महावीराष्टक भाषा

पं० गजाधरलालजी, न्यायतीर्थ

जिन्होंकी प्रज्ञामें, मुकुरसम चैतन्य जड़ भी, स्थिती नाशोत्पत्ती, युत झलकते साथ सब ही। जगद्ज्ञाता मार्ग, प्रकट करते सूर्यसम जो, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥१॥ जिन्होंके दो चक्षू, पलक अरु लाली रहित हो, जनोंको दर्शाते, हृदयगत कोधातिलयको। जिन्होंकी शांतात्मा, अतिविमलमूर्ती स्फुटमहा, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥२॥ नमंते इंद्रोंके, मुकुटमणिकी कांति धरता, जिन्होंके पादोंका युग, ललित, संतप्त जनको। भवाग्नीका हर्ता, स्मरण करते ही सुजल है, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ३ ॥ जिन्होंकी पूजासे, मुदित-

मन हो मेंढक जबै, हुआ स्वर्गो ताहो, समय गुणधारो अति-सुखी। लहैं जो मुक्तीके, सुख भगत तो विस्मय कहा, महावीर-स्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ४ ॥ तपे सोने ज्यों भी, रहित वपुसे, ज्ञानगृह हैं, अकेले नाना भी, नृपतिवर सिद्धार्थ सुत—हैं। न जन्मे भी श्रीमान्, भवरत नहीं अद्भुतगती, महावीरस्वामी दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ५ ॥ जिन्होंकी वाग्गंगा, अमल नयकल्लोल धरती, न्हवाती लोगोंको, सुविमल महा ज्ञान जलसे। अभी भी सेते हैं, बुधजन महाहंस जिसको, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ६ ॥ त्रिलोकीका जेता, मदनभट जो दुर्जय महा, युवावस्थामें भी, वह दलित कीना स्वबलसे। प्रकाशी मुक्तीके, अतिसुखदाता जिनविभू, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ७ ॥ महामोहव्याधी, हरणकरता वैद्य सहज, बिना इच्छा बंधू, प्रथितजग कल्याण करता। सहारा भव्योंको सकल जगमें उत्तम गुणी, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥८॥

संस्कृत वीराष्टक रच्यो, भागचन्द रुचिवान।
तस भाषा अनुवाद यह, पढ़ि पावे निर्वान ॥ ९ ॥

१८ अकलंक स्तोत्र।

शार्दूल विक्रीडित छन्द।

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम्। साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि ॥ रागद्वेषभया मयान्तकजरा लोलत्वलोभादयो, नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वंद्यते ॥ १ ॥ दग्धं येन पुरत्रयं शरभवा तीव्रार्चिषा वन्हिना।

यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने यस्यात्मजो वा गुहः ॥ सोऽयं किं मम शङ्करो भयतृषारोषार्तिमोहक्षयं । कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनुभृतां क्षेमंकरःशङ्करः ॥ २ ॥ यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येन्द्रवक्षःस्थलम् । सारथ्येन धनञ्जयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान् ॥ नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ज्ञानमव्याहतम् । विश्वंव्याप्यविजृम्भते सतु महाविष्णुःसदृष्टो मम ॥ ३ ॥ ऊर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेनो यदीयं पुनः । पात्री दण्डकमण्डलुप्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिम् ॥ आविर्भावयितुं भवन्ति स कथं ब्रह्माभवेन्मादृशाम् । क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्मा कृतार्थोऽस्तु नः ॥ ४ ॥ योजग्ध्वा पिशितंसमत्स्यकवलं जीवंच शून्यं बदन् । कर्त्ताकर्मफलं न भुंक्त इतिथो वक्ता स बुद्धःकथम् ॥ यज्ज्ञानं क्षणवर्ति वस्तु सकले ज्ञातुं न शक्तंसदा । यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्सबुद्धो मम ॥५॥

स्रग्धरा छन्द–ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात् । नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथ सांगनः सात्मजश्च ॥ आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायः । सक्षपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥ ६ ॥ ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेग विभ्रांतचेताः । शम्भुः खट्वाङ्गधारीगिरिपतितनयापांग लीलानुविद्धः । विष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमेद्गोपनाथस्य मोहादर्हन्विध्वस्तरागो जितसकलभयः कोऽयमेष्वाप्तनाथः ॥ ७ ॥

शार्दूल विक्रीडित छन्द–एको नृत्यति विप्रसार्य ककुभां चक्रे सहस्रं भुजानेकः शेषभुजङ्गभोगशयने व्यादाय निद्रायते । द्रष्टुं चारुतिलोत्तमामुखमगा देकश्चतुर्वक्त्रता । मेते मुक्तिपथं वदन्तिविदुषा मित्येतदत्यद्भुतम् ॥८॥

रयं विहताधिकारः। मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्रव्याजात्त्रिधा धृतधनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ २६ ॥ स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन-कान्तिप्रतापयशसामिव सञ्चयेन। माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥ दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रि-दशाधिपानामुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान्। पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥ २८ ॥ त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि यत्तारयस्त्यसुमतो निज-पृष्ठलग्नान्। युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥ २९ ॥ विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्ग-तस्त्वं किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश। अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतुः ॥ ३० ॥ प्रा-ग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषादुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि। छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्वमीभिर-यमेव परं दुरात्मा ॥ ३१ ॥ यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमं भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारम्। दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारिकृत्यम् ॥ ३२ ॥ ध्वस्तोर्ध्व-केशविकृताकृतिमर्त्यमुण्डप्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः। प्रेत-व्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःख-हेतुः ॥ ३३ ॥ धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्यमाराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः। भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः पाद-द्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥ ३४ ॥ अस्मिन्नपारभववा-रिनिधौ मुनीश ! मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव! मन्ये मया महितमीहितदान-
दक्षम्। तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां जातो निकेतनमहं म-
थिताशयानाम्॥ ३६॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन पूर्वं विभो
सकृदपि प्रविलोकितोऽसि। मर्माविधा (भिदो) विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते॥ ३७॥ आकर्णितोपि महितोऽपि
निरीक्षितोपि नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या। जातोऽ-
स्मि तेन जनबांधव दुःखपात्रं यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-
शून्याः॥३८॥ त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल हे शरण्य कारुण्पुण्यवसते
वशिनां वरेण्य। भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय दुःखाङ्कुरो-
द्दलनतत्परतां विधेहि॥३९॥ निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्यमा-
साद्य सादितरिपुप्रथितावदानम्। त्वत्पादपङ्कजमपि प्रणिधानव-
न्ध्यो वन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन हा हतोऽस्मि॥४०॥ देवेन्द्रवन्द्य
विदिताखिलवस्तुसार संसारतारक विभो भुवनाधिनाथ। त्राय-
स्व देव करुणाहृद मां पुनीहि सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः॥४१॥
यद्यस्ति नाथ भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां भक्तेः फलं किमपि सन्ततस-
ञ्चितायाः। तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः स्वामी त्वमेव
भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि॥४२॥ इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः। त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजब-
द्धलक्ष्याः ये संस्तवं तव विभो रचयन्ति भव्याः॥४३॥ जननयन-
कुमुदचन्द्र—प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा। ते विगलितमलनि-
चया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते॥४४॥

२१ कल्याण मन्दिर (भाषा)

दोहा—परमज्योति परमात्मा, परमज्ञान परवीन ।
बंदू परमानन्दमय, घट घट अन्तर लीन ॥

चौपाई ।

निर्भय करण परम परधान । भव समुद्र जल तारण यान ॥
शिव मन्दिर अघहरण अनिन्द । बन्दू पार्श्व चरण अरविन्द ॥१॥
कमठ मान भञ्जन बरवीर । गरिमा सागर गुण गम्भीर ॥
सुर गुरु पारि लहै नहिं जासु । मैं अजान गुणु जम्पू तासु ॥२॥
प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह । क्यों हमसे यह होय निबाह ॥
ज्यों दिन अन्ध उलूको पोत । कहि न सकै रवि किरण उद्योत ॥३॥
मोह होन जानैं मन माहिं । तोहि न तुल गुण बरणे जाहिं ॥
प्रलय पयोधि करै जल बौन । प्रगटहि रत्न गिने तिहि कौन ॥४॥
तुम असंख्य निर्मल गुण खान । मैं मतिहीन कहौं निज बान ॥
ज्यों बालक निज बाहिं पसार । सागर परिमित कहै बिचार ॥५॥
जो योगीन्द्र करहिं तप खेद । तेउ न जानहिं तुम गुण भेद ॥
भक्ति भाव मुझ मन अभिलाष । ज्यों पक्षी बोलैं निज भाष ॥६॥
तुम यश महिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन आधार ॥
आवै पवन पद्म सर होय । ग्रीष्म तपन निवारै सोय ॥७॥
तुम आवत भविजन मन मांहिं । कर्म निबन्ध शिथिल हो जाहिं ॥
ज्यों चन्दन तरु बोलैं मोर । डरहिं भुजङ्ग चलैं चहुं ओर ॥८॥
तुम निरखत जन दीन दयाल । सङ्कट तैं छूटैं तत्काल ॥
ज्यों पशु घेर लेहिं निशि चोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥९॥

तुम भविजन तारक किम होय। ते चितधार तिरहि ले तोय ॥
यह ऐसे कर जान स्वभाव। तरहिं मशक ज्यों गर्भित बाव ॥१०॥
जिन सब देव किये वश वाम। तिन छिनमें जीतो सो काम।
ज्यों जल करै अग्नि कुल हान। बड़वानल पीवै सोपान ॥११॥
तुम अनन्त गुरुवा गुण लिये। क्यों कर भक्त धरै निज हिये ॥
है लघु रूप तरहिं संसार। यह प्रभु महिमा अगम अपार ॥ १२ ॥
क्रोध निवार कियो मन शान्ति। कर्म सुभट जीते केहि भांति ॥
यह पटुतर देखहु संसार। नील वृक्ष ज्यौं दहै तुषार ॥ १३ ॥
मुनि जन हिये कमल निज टोहि। सिद्धस्वरूप सम ध्यावै तोहि ॥
कमल कर्णिका बिन नहिं और। कमल बीज उपजनकी ठौर ॥१४॥
जब तुम ध्यान धरै मुनि कोय। तब विदेह परमातम होय ॥
जैसे धातु शिला तनु त्याग। कनक स्वरुप धवैं जब आग ॥१५॥
जाके मन तुम करहु निवास। विलय जाय सब विग्रह तास ॥
ज्यों महन्त बिच आवै कोय। विग्र मूल निवारै सोय ॥१६॥
करहिं विविध जो आतम ध्यान। तुम प्रभाव तें होय निदान ॥
जैसे नीर सुधा अनुमान। पीवत विष विकारकी हान ॥ १७ ॥
तुम भगवन्त विमल गुण लीन। समल रूप मानहिं मतिहीन ॥
ज्यों नलिया रोग दृग गहै। वर्ण विवर्ण शङ्ख सो कहै ॥ १८ ॥

दोहा—निकट रहित उपदेश सुन, तरुवर भयो अशोक। ज्यों रवि उगते जीव सब, प्रगट होत भुवि लोक ॥ १९ ॥ सुमन वृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेठ बीठ मुख सोय। त्यों तुम सेवत सुमन जन बन्ध अधोमुख होय ॥२०॥ उपजी तुम हिय उदधि तें वाणी सुधा समान। जिहिं पीवत भविजन लहैं, अजर अमर पदथान ॥ २१ ॥

पन्थ भक्ति रचना कर पूरे। पञ्च कल्याणक ऋद्धि पाय निश्चै दुख चूरे ॥ २४ ॥ अहो जगत्पति पूज्य अवधि ज्ञानी मुनि हारे। तुम गुण कीर्तन माहिं कौन हम मन्द विचारे ॥ थुति छल सो तुम विषै देव आदर विस्तारे। शिव सुख पूरण हार कल्पतरु यही हमारे ॥ २५ ॥ वादराज मुनिराज शब्द विद्याके स्वामी। वादराज मुनिराज तर्क विद्यापति नामी ॥ वादराज मुनिराज काव्य करना अधिकारी। वादराज मुनिराज बड़े भवजन उपकारी ॥२६॥

मूल अर्थ बहु विधि कुसुम, भाषा सूत्र मझार।
भक्तिमाल भूदर करी, करो कण्ठ सुखकार ॥ १॥

तीसरा अध्याय

२४ इष्ट छत्तीसी।

सोरठा—प्रणमूं श्री अरहंत, दयाकथित जिन धर्मको। गुरु निरग्रंथ महंत, अवर न मानूं सर्वथा ॥ १ ॥ बिन गुणकी पहिचान जानै वस्तु समानता। तातें परम बखान, परमेष्टी गुणको कहूं ॥२॥ रागद्वेषयुत देव, मानै हिंसाधर्म पुनि। सग्रन्थगुरुकी सेव, सो मिथ्याती जग भ्रमै ॥ ३ ॥

अरहंतके ४६ मूल गुण।

दोहा—चौतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनंत चतुष्टय गुणसहित, छीयालीसों पाठ ॥ ४ ॥

अर्थ—३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य, ४ अनंतचतुष्टय ये अरहंतके ४६ मूलगुण होते हैं। अब इनका भिन्न २ वर्णन करते हैं।

जन्मके १० अतिशय।

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार। प्रियहितवचन अतौल बल, रुधिर श्वेत आकार। लच्छन सहसरु आठ तन, समचतुष्कसंठान। वज्रवृषभनाराच युत,ये जनमत दश जान ॥६॥

अर्थ—१ अत्यन्त सुन्दर शरीर, २ अति सुगन्धमय शरीर, पसेवरहित शरीर, ४ मलमूत्ररहित शरीर, ५ हित मितप्रियवचन बोलना, ६ अतुल बल, ७ दुग्धवत् श्वेत रुधिर, ८ शरीरमें एक हजार आठ लक्षण, ९ समचतुरस्रसंस्थान १० वज्रवृषभनाराचसंहनन ये दश अतिशय अरहंत भगवानके जन्मसे ही उत्पन्न होते है।

केवलज्ञानके १० अतिशय।

योजन शत इकमें सुभिक्ष,गगनगमन मुख चार। नहिं,अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार ॥ सब विद्या ईश्वरपनों, नाहिं बढ़ै नख केश। अनिमिष दृग छायारहित, दश केवलके वेश ॥८॥

अर्थ—१ एक सौ योजनमें सुभिक्षता; अर्थात् जिस स्थानमें केवली हों उनसे चारों तरफ सौ सौ योजनमें सुकाल होता है, २ आकाशमें गमन, ३ चार मुखोंका दीखना, ४ अदयाका अभाव, ५ उपसर्गरहित, ६ कवल (ग्रास) वर्जित आहार, ७ समस्त विद्याओंका स्वामीपना, ८ नखकेशोंका नहीं बढ़ना ९ नेत्रोंकी पलकें नहीं झपकना, १० छायारहित शरीर। ये १० अतिशय केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे प्रगट होते हैं ॥८॥

देवकृत १४ अतिशय।

देवरचित हैं चार दश,अर्द्ध मागधी भाष । आपस मांहीं मित्रता निरमल दिश आकाश ॥९॥ होत फूल फल ऋतु सबे, पृथवी काच समान । चरण कमलतल कमल है, नभ तैं जय जय बान ॥१०॥ मन्द सुगन्ध बयारि पुनि, गंधोदककी वृष्टि । भूमिविषें कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि ॥११॥ धर्मचक्र आगे रहे,पुनि वसु मङ्गल सार । अतिशय श्रीअरहन्तके, ये चौतीस प्रकार ॥

अर्थ—१ भगवानकी अर्द्धमागधी भाषाका होना, २ समस्त जीवोंमें परस्पर मित्रताका होना, ३ दिशाओंका निर्मल होना, ४ आकाशका निर्मल होना, ५ सब ऋतुके फल पुष्प धान्यादिकका एक ही समय फलना,६ एक योजनतककी पृथिवीका दर्पणवत निर्मल होना, ७ चलते समय भगवान्के चरण कमलके तले सुवर्ण कमलका होना, ८ आकाशमें जय जय ध्वनिका होना, ९ मंदसुगन्धित पवनका चलना, १० सुगन्धमय जलकी वृष्टि होना, ११ पवनकुमार देवोंके द्वारा भूमिका कण्टक रहित होना, १२ समस्त जीवोंका आनन्दमय होना, १३ भगवानके आगे धर्मचक्रका चलना, १४ छत्र, चमर, ध्वजा, घन्टादि अष्ट मङ्गल द्रव्योंका साथ रहना । इस प्रकार सब मिलाकर ३४ अतिशय अरहन्त भगवानके होते हैं ॥१२॥

अष्ट प्रातिहार्य्य ।

तरु अशोकके निकटमें, सिंहासन छबिदार । तीन छत्र सिरपर लसें भामंडल पिछवार ॥१३॥ दिव्यध्वनि मुखतें खिरै पुष्पवृष्टि सुर होय । ढारैं चौसठि चमर लख । बाजैं दुंदुभि जोय ॥१४॥

अर्थ—१, अशोकवृक्षका होना, २ रत्नमय सिंहासन, ३ भग-

वानके सिरपर तीन छत्रका फिरना, ४ भगवानके पीछे भामण्ड-लका होना, ५ भगवानके मुखसे दिव्यध्वनिका होना, ६ देवोंके द्वारा पुष्पवृष्टिका होना, ७ यक्षदेवोंद्वारा चौसठ चंवरोंका ढुरना, दुंदुभी बाजोंका बजना ये आठ प्रातिहार्य हैं।

अनन्तचतुष्टय।

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख, दरस अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अरहंत सो, इष्टदेव पहिचान ॥१५॥

अर्थ—१ अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान, ३ अनन्तसुख, ४ अनन्तवीर्य जिसमें इतने गुण हो, वह अरहन्त परमेष्ठी है।

अष्टादशदोषवर्जन।

जनम जरा तिरषा क्षुधा विस्मय आरत खेद। रोग शोक मद मोह भय निद्रा चिन्ता खेद ॥१६॥ राग द्वेष अरु मरण जुत, यह अष्टादश दोष। नाहिं होत अरहंतके सो छवि लायक मोष।

अर्थ—१, जन्म, २ जरा,३ तृषा, ४ क्षुधा, ५ आश्चर्य, ६ अरति (पीड़ा), ७ खेद, (दुःख), ८ रोग, ९ शोक. १० मद, ११ मोह, १२ भय, १३ निद्रा, १४ चिन्ता, १५ पसीना, १६ राग, १७ द्वेष, १८ मरण ये १८ दोष अरहन्त भगवानमें नहीं होते ॥१७॥

सिद्धोंके ८ गुण।

समकित दरसन ज्ञान, अगुरलघु अवगाहना।
सूच्छम वीरजवान निराबाध गुन सिद्धके ॥१८

अर्थ—१ सम्यक्त्व, २ दर्शन, ३ ज्ञान, ४ अगुरुलघुत्व, ५ अव-गाहनत्व, ६ सूक्ष्मत्व, ७ अनन्तवीर्य्य, ८ अव्याबाधत्व ये सिद्धोंके ८ मूलगुण होते हैं॥

आचार्यके ३६ गुण — द्वादश तप दश धर्मजुत पालैं पञ्चाचार।
षट् आवशिक त्रयगुप्ति गुन आचारज पदसार॥

अर्थ—तप १२, धर्म १०, आचार ५, आवश्यक ६, गुप्ति ३ ये आचार्य महाराजके ३६ मूलगुण होते हैं। अब इनको भिन्न २ कहते हैं॥ १६॥

द्वादश तप।

अनशन ऊनोदर करै, व्रतसंख्या रस छोर। विविक्तशयन आसन धरै काय कलेश सुठोर। प्रायश्चित धर विनयजुत वैयाव्रत स्वाध्याय। पुनि उत्सर्ग विचारकै धरै ध्यान मन लाय॥२१॥

अर्थ—१ अनशन, २ ऊनोदर, ३ व्रतपरिसंख्यान, ४ रसपरित्याग, ५ विविक्तशय्याशन, ६ कायक्लेश, ७ प्रायश्चित लेना, ८ पांच प्रकारका विनय करना, ९ वैयाव्रत करना, १० स्वाध्याय करना ११ व्युत्सर्ग (शरीरसे ममत्व छोड़ना), और १२ ध्यान करना ये बारह प्रकारके तप है॥२१॥

दश धर्म—छिमा मारदव आरजव, सत्यवचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरव, आकिंचन तियत्याग॥

अर्थ-१ उत्तमक्षमा, २ मार्दव, ३ आर्जव, ४ सत्य, ५ शौच, ६ संयम, ७ तप, ८ त्याग, ९ आकिंचन, १० ब्रह्मचर्य ये दश प्रकारके धर्म हैं॥ २२॥

षट आवश्यक—समता धर बंदन करै, नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय॥

अर्थ-१ समता (समस्त जीवोंसे समता भाव रखना) २, बंदना, ३ स्तुति (पञ्चपरमेष्ठीकी स्तुति) करना, प्रतिक्रमण (लगे

हुए दोषोंपर पश्चाताप) करना, ५ स्वाध्याय, और ६ कायोत्सर्ग (ध्यान) करना ये छह आवश्यक हैं ॥२३॥

पंचाचार और तीन गुप्ति।

दर्शन ज्ञान चारित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपे मनबचकायको, गिन छत्तीस गुन सार ॥

अर्थ—१ दर्शनाचार, २ ज्ञानाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार, ५ वीर्याचार, १ मनोगुप्ति मनको वशमें करना, २ वचनगुप्ति वचनको वशमें करना, ३ कायगुप्ति शरीरको वशमें करना, इस प्रकार सब मिलाकर आचार्यके ३६ मूलगुण हैं ॥२४॥

उपाध्यायके २५ गुण।

चौदह पूरबको धरें, ग्यारह अङ्ग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ें पढ़ावें ज्ञान ॥२५॥

अर्थ—११ अङ्ग १४ पूर्वको आप पढ़ें और अन्यको पढ़ावे ये ही उपाध्यायके २५ गुण हैं ॥२५॥

ग्यारह अङ्ग।

प्रथमहि आचारांग गुनि, दूजा सूत्रकृतांग। ठाण अङ्ग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ॥२६॥ व्याख्या प्रज्ञप्ति पंचमो, ज्ञातृ कथा षट आन। पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत दशठान ॥ अनुत्तरणउत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान। बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अङ्ग प्रमान ॥

अर्थ—१ आचारांग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग ४ समवायांग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञातृकथांग, ७ उपासकाध्ययनांग, ८ अन्तःकृतदशांग, ९ अनुत्तारोत्पाददशांग, १० प्रश्नव्याकरणांग, ११ वि-

पाकसूत्रांग, ये ग्यारह अङ्ग हैं ॥२८॥

चौदह पूर्व ।

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद । अस्ति नास्ति परवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद ॥ छट्ठो कर्मप्रवाद है, सतप्रवाद पहिचान । अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान ॥३०॥ विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्वकल्याण महत । प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिंदु है अन्त ॥३१॥

अर्थ—१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणि पूर्व, ३ वीर्य्यानुवादपूर्व, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ कर्मप्रवादपूर्व, ७ सत्प्रवादपूर्व, ८ आत्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याख्यानपूर्व, १० विद्यानुवादपूर्व, ११ कल्याणवादपूर्व, १२ प्राणानुवादपूर्व, १३ क्रियाविशालपूर्व, १४ लोकबिन्दुपूर्व ये १४ पूर्व हैं ॥

सर्वसाधुके २८ मूलगुण ।

पंचमहाव्रत—हिंसा अनृत तस्करो, अब्रह्म परिग्रह पाय । मनवचननैं त्यागवो, पंचमहाव्रत थाय ॥३२॥

अर्थ—१ अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, ३ अचौर्य महाव्रत, ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५ परिग्रहत्याग महाव्रत, ये पांच महाव्रत है । पांच समिति—ईर्य्या, भाषा, एषणा, पुनि क्षेपन, आदान । प्रतिष्ठापनाजुत क्रिया, पांचों समिति विधान ॥

अर्थ—१ ईर्य्या समिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति ४ आदाननिक्षेपणसमिति, ५ प्रतिष्ठापनासमिति, ये पांच समिति हैं ॥

पांच इन्द्रियोंका दमन ।

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रका रोध ।

षट आवशि मंजन तजन, शयन भूमिको शोध ॥

अर्थ—१ स्पर्शन (त्वक्), २ रसना, ३ घ्राण, ४ चक्षु, और ५ श्रोत्र—इन पांच इंन्द्रियोंका वश करना सो इन्द्रियदमन है (छह आवश्यक आचार्यके गुणोंमें देखो) ॥३४॥

शेष सात गुण ।

वस्त्रत्याग कचलोंच अरु, लघु, भोजन इकबार ।

दांतन मुखमें ना करें, ठाड़े लेहिं अहार ॥३५॥

अर्थ—१ यावज्जीव स्नानका त्याग, २ शोधकर (देख भाल कर) भूमिपर सोना, ३ वस्त्रत्याग (दिगम्बर होना), केशोंका लौंच करना, ५ एक बार लघु भोजन करना, ६ दन्तधावन नहीं करना, ७ खड़े खड़े आहार लेना, इन सात गुणोंसहित २८ मूल गुण सर्व मुनियोंके होते हैं ॥३४॥

साधर्मी भवि पाठनको, इष्टछत्तीसी ग्रन्थ ।

अल्पबुद्धि बुधजन रच्यो, हितमित शिवपुरपन्थ ॥

इति पंचपरमेष्टी १४३ मूलगुणोंका वर्णन समाप्त ।

२५ दर्शनपाठ ।

अनादिनिधन महामंत्र ।

णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

मंदिरजीकी वेदीगृहमें प्रवेश करते हो "जय जय जय निःसहि, निःसहि, निःसहि" इस प्रकार उच्चारण करके उपर्युक्त महामंत्रका ६ वार पाठ करे । तत्पश्चात्—

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं। सिद्ध मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं। चत्तारि लोगुत्तमा। अरिहन्त लोगोत्तमा सिद्ध लोगुत्तमा। साहू लोगुत्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥२॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहन्त सरणं पव्वज्जामि। सिद्धसरणं पव्वज्जामि। साहूसरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वजामि॥ ॐ भ्रौं भ्रौं स्वाहा॥

वर्तमान चौबीस तीर्थंकरोंके नाम।

श्रीऋषभः १ अजितः २ संभवः ३ अभिनन्दनः ४ सुमतिः ५ पद्मप्रभः ६ सुपार्श्वः ७ चंद्रप्रभः ८ पुष्पदन्तः ६ शीतलः १० श्रीयांस ११ वासुपूज्यः १२ विमलः १३ अनन्तः १४ धर्मः १५ शांतिः १६ कुन्थुः १७ अरः १८ मल्लिः १६ मुनिसुव्रतः २० नमिः २१ नेमिः २२ पार्श्वनाथः २३ महावीरः २४ इति वर्तमानकालसम्बन्धो चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

अद्य मे सफलं जन्म, नेत्रे च सफले मम। त्वामद्राक्षं यतो देव, हेतुमक्षयसम्पदः ॥१॥ अद्य संसारगम्भीरपारावारः सुदुस्तरः। सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥२॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते। स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥३॥ अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमङ्गलम्। संसारार्णवतीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥४॥ अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम्। दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥ अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः। नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात ॥६॥ अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणा दुःखदायकः। सुखसंगं समापन्नो जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥७॥ अद्य क-

माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम् । सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥ अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ताज्ञानदिवाकरः । उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।९॥ अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः । भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १० ॥ चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने । परमात्माप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥११॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम । तस्मात्कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥१२ ॥ न हि त्राता न हि त्राता न हि त्राता जगत्रये । वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१३॥ जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने । सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥ १४ ॥ जिनधर्मविनिर्मुक्तं मा भवन् चक्रवर्त्यपि । स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासितम् ॥१५॥

इस प्रकार बोलकर साष्टांगनमस्कार करना चाहिये । नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये चांवल चढ़ाना हो तो नीचे लिखा श्लोक तथा मन्त्र पढ़कर चढ़ावे ।

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन्सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षताङ्गैर्धवलाक्षतोघैर जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥
ॐ ह्रीं अक्षयपदप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्योअक्षतान् निर्वपामि ।

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखा श्लोक पढ़ें ।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान् वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखप्रसूनैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥२॥
ॐ ह्रीं कामबाणविध्वंसनाय देवशास्त्रगुरुभ्यः पुष्पं निर्वपामि ।

यदि किसीको लोंग, बदाम, इलायची या कोई प्रासुक हरा

फल चढ़ाना हो तो, नीचे लिखा श्लोक और मन्त्र पढ़कर चढ़ावे।

क्षुभ्यल्लिलुभ्यन्मनसाऽप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान्।

फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥

ॐ ह्रीं मोक्षफलप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्यः फलं निर्वपामि॥

यदि किसीको अर्घ चढ़ाना हो, तो नीचे लिखा श्लोक पढ़ें।

सद्वारिगन्धाक्षतपुष्पजातैर् नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः।

फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोग्यान जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥

ॐ ह्रीं अनर्घ्यपदप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्योऽर्घं।

इस प्रकारके द्रव्योंमेंसे जो द्रव्य हो, उसी द्रव्यका श्लोक व मन्त्र पढ़कर वह द्रव्य चढ़ाना चाहिये। तत्पश्चात् नीचे लिखी दोनों स्तुतियां अथवा दोनोंमेंसे कोई एक स्तुति अवश्य पढ़नी चाहिये।

२६ दौलतराम कृत स्तुति

दोहा—सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्दरसलीन।

सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरजरहसबिहीन॥

जय वीतराग विज्ञानपूर। जय मोहतिमिरको हरनसूर॥ जय ज्ञान अनन्तानन्तधार। दृगसुख वीरजमण्डित अपार॥ १॥ जय परमशांति मुद्रा समेत। भविजनको निज अनुभूति हेत॥ भवि भागनवश जोगे वशाय। तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥ २॥ तुम गुण चिन्तत निज पर विवेक। प्रघटै, विघटैं आपद अनेक॥ तुम जगभूषण दूषणवियुक्त। सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त॥ ३॥ अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप। परमात्म परमपावन अनूप॥ शुभ

अशुभ विभाव अभाव कीन। स्वाभाविक परिणतिमय अछीन ॥४॥ अष्टादशदोष विमुक्त धीर। सुचतुष्टयमय राजत गंभीर ॥ मुनि गणधरादि सेवत महंत। नवकेवल लब्धिरमा धरन्त ॥ ५ ॥ तुम शासन सेय अमेय जीव। शिव गये जाहिं जै हैं सदीव ॥ भव-सागरमें दुःख छारवारि। तारनको और न आप टारि ॥ ६ ॥ यह लखि निजदुःखगदहरणकाज। तुमही निमित्त कारण इलाज ॥ जानें तातै मैं शरण आय। उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥७॥ मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप। अपना ये विधिफल पुण्य-पाप ॥ निजको परको करता पिछान। परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ८ ॥ आकुलित भयो अज्ञानधारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ॥ तन परणतिमें आपो चितारि। कबहूं न अनुभयो स्वपदसार ॥९॥ तुमको बिन जाने जो कलेश। पाये सो तुम जानत जिनेश ॥ पशु नारक नर सुर गतिमंझार। भव धर धर मर्यो अनन्तवार ॥१०॥ अब काललब्धिबलतें दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ॥ मन शान्त भयो मिट सकलद्वंद। चाख्यो स्वातमरस दुखनिकन्द ॥११॥ तातैं अब ऐसो करहु नाथ। बिछुरै न कभी तुव चरण साथ ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव। जग तारनको तुम विरद एव ॥ १२ ॥ आतमके अहित विषय कषाय। इनमें मेरी परिणति न जाय ॥ मैं रहूं आपमें आप लीन। सो करो होहुं ज्यों निजाधीन ॥ १३ ॥ मेरे न चाह कुछ और ईश। रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥ मुझ कारनके कारज सु आप। शिव करहु हरहु मम मोहताप।१४। शशि शांतकरन तपहरनहेत। स्वमेव तथा तुम कुशल देत ॥ पीवत पियूष ज्यों रोग जाय। त्यों तुम अनुभवतैं भव नसाय ॥ १५ ॥

त्रिभुवन तिहुंकाल मंझार कोय। नहिं तुम बिन निजसुख दाय होय ॥ मो उर यह निश्चय भयो आज। दुखजलधि उतारन तुम जिहाज ॥ १६ ॥

दोहा—तुमगुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोग संभार ॥

२७ अथ बुधजनकृत स्तुति

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो शरणजी। यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी ॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकारजी। या बुद्धिसेती निज न जाण्या, भ्रम गिण्या हितकारजी ॥ १ ॥ भवविकट वनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हस्यो। तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतो फिस्यो ॥ धन घड़ी यो धन दिवस योही, धन जनम मेरो भयो। अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुको लख लयो ॥ २ ॥ छवि वीतरागी नगनमुद्रा, दृष्टि नासापै धरै। वसुप्रातिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रविछविको हरै ॥ मिट गयो तिमर मिथ्यात मेरो उदय रवि आतम भयो। मो उर हरख ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो ॥३॥ मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, बीनऊं तव चरनजी। सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारन तरनजी ॥ जाचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथजी। 'बुध' जाचहूं तुव भक्ति भवभव, दीजिये शिवनाथजी ॥४॥

इस प्रकार एक या दोनों स्तुति पढ़कर पुनः साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। तपश्चात् नीचे लिखा श्लोक पढ़कर गंधोदक मस्तकपर तथा हृदयादि उत्तम अंगोंमें लगाना चाहिये।

निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशनम् ।

जिनगन्धोदकं वंदे अष्टकर्मविनाशकम् ॥ १ ॥

यदि आशिका लेनी हो, तो यह दोहा पढ़कर लेना चाहिये ।

दोहा—श्रीजिनवरकी आशिका, लीजे शीश चढ़ाय ।

भवभवके पातक कटें, दुःख दूर हो जाय ॥ २ ॥

तत्पश्चात् नीचे लिखे दो अथवा एक कवित्त पढ़कर शास्त्रजीको साष्टांग नमस्कार करके शास्त्रजीको सुनना चाहिये। अथवा थोड़ा बहुत किसी भी शास्त्रका स्वाध्याय करना चाहिये ।

२८ जिनवाणी माताकी स्तुति ।

वीरहिमाचलतैं निकसी, गुरुगौतमके मुख कुंड ढरी है। मोह महाचल भेद चली, जगकी जड़ता तप दूर करी है ॥ ज्ञानपयोनिधिमाहिं रली बहुभङ्ग तरङ्गनिसों उछरी है। या शुचि शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलीकर शीस धरी है ॥ १ ॥ या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी। श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी ॥ तो किस भांति पदारथपांति, कहां लहते रहते अविचारी। या विधि संत कहैं धनि हैं धनि, हैं जिन वैन बड़े उपकारी ॥ २ ॥

रात्रिको भी इसी प्रकार दर्शन करके तत्पश्चात् दीप धूपसे नीचे लिखी अथवा जिसपर रुचि हो वह आरती करना चाहिये ॥

२९ पंचपरमेष्ठीकी आरती ।

मनवचतनकर शुद्ध पंचपद, पूजो भविजन सुखदाई। सबजन मिलकर दीप धूप ले, करहुं आरती गुणगाई ॥ टेक ॥ प्रथमहिं

श्री अरहंत परमगुरु, चौंतिस अतिशय सहित बसैं ॥ प्रातिहार्य वसु अतुल चतुष्टय, सहिय समवसृत मांहि लसैं। क्षुधा तृषा भय जन्म जरा मृत, रोग शोक रति अरति महा। विस्मय खेद स्वेद मद निद्रा, राग द्वेष मिल मोह दहा ॥ इन अष्टादश दोष रहित नित, इन्द्रादिक पूजत आई ॥सब० ॥ दूजे सिद्ध सदा सुखदाता, सिद्धशिलापर राजत हैं। सम्यक्दर्शन ज्ञान वीर्य अरु, सूक्ष्मपणाको छाजत है ॥ अगुरु लघू अवगहन शक्ति धर, बाधाबिन अशरीरा हैं। तिनका सुमरण नित्य किये तें, शीघ्र नशात भव पीरा है ॥ या कारण नित चित्तशुद्ध कर, भजहु सिद्ध शिवके राई। सब० ॥ तीजे श्रीआचार्य परमगुरु छत्तिस गुणके धारी हैं। दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज, पंचाचार प्रचारी है ॥ द्वादशतप दशधर्म गुप्तित्रय, षट् आवश्यक नित पालें। सब मुनिजनको प्रायश्चित दे, मुनिव्रतके दूषण टालें ॥ ऐसे श्रीआचार्य गुरुनकी, पूजा करिये चित लाई। सब० ॥ चौथे श्रीउवझायकरणपंकजरज, सुखदा भविजनको। ग्यारह अंग सुपूव चतुर्दश, पढ़ैं पढ़ावें मुनि गनको ॥ मुनिके सब आचरण आचरें, द्वादश तपके धारी हैं। स्याद्वाद सुखकारी विद्या, सब जगमें विस्तारी हैं ॥ ऐसे श्रीउवझाय गुरुनके, चरणकमल पूजहुं भाई। सब०॥ पंचमि आरति सर्वसाधुकी, आठवीस गुण मूल धरें। पचमहाव्रत पंचसमितिधर, इन्द्रिय पांचों दमन करें ॥ षट् आवश्यक केशलोंच, इक बार खड़े भोजन करते। दांतन स्नान त्याग भू सोवन, यथाजात मुद्रा धरते ॥ या विधि "पन्नालाल" पंचपद, पूजत भवदुख नश जाई। सब० ॥

इस प्रकार आरता बोलकर नीचे लिखा श्लोक दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तक चढ़ावे।

ध्वस्तोद्यमान्धीकृतविश्वविश्वमोहान्धकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्काञ्चनभाजनस्थैः जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन यजेऽहम्

दोहा—स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकर हीन।
जासूं पूजूं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

३० आलोचना पाठ।

दोहा—वन्दों पांचो परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
कहूं शुद्ध आलोचना, शुद्ध करनके काज ॥१॥

सखी छन्द (१४ मात्रा)

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी॥ तिनकी अब निर्वृतिकाजा। तुम शरन लही जिनराजा ॥ २ ॥ इक वे ते चऊ इन्द्री वा। मनरहित सहित जे जीवा॥ तिनकी नहिं करुना धारी। निरदई ह्वै घात विचारी ॥ ३ ॥ समरम्भ समारम्भ आरम्भ। मनबचतन कीने प्रारम्भ॥ कृत कारित मोदन करिकै। क्रोधादि चतुष्टय धरिकै ॥ ४ ॥ शत आठ जु इम भेदनतैं। अघ कीने परछेदनतैं॥ तिनकी कहुं को लौं कहानी। तुम जानत केवल ज्ञानी ॥ ५ ॥ विपरीत एकांत विनयके। संशय अज्ञान कुनयके॥ वश होय घोर अघ कीने। बचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥ कुगुरु-नकी सेवा कीनी। केवल अदयाकरि भीनी॥ या विधि मिथ्यात भ्रमायो। चहुंगति मधि दोष उपायो ॥ ७ ॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी। परवनितासों दृगजोरी॥ आरम्भपरिग्रह भीनो। पुन पाप

जु या विधि कीनो ॥ ८ ॥ सपरस रसना घ्रानकको। चख कान विषय सेवनको ॥ बहु करम किये मनमानी। कछु न्याय अन्याय न जानी ॥ ६ ॥ फल पञ्च उदंबर खाये। मधु मांस मद्य चित चाहे ॥ नहिं अष्ट मूलगुणधारी। विसन जु सेये दुखकारी ॥१०॥ दुइ बीस अभख जिन गाये। सो भी निशदिन भुंजाये ॥ कछु भेदाभेद न पायो। ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥११॥ अनंतान जु बधी जानो। प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥ संज्वलन चौकरी गुनिये। सब भेद जु षोड़श सुनिये ॥१२॥ परिहास अरति रति शोग। भय ग्लानि त्रिवेद संजोग ॥ पनवीस जु भेद भये इम। इनके वश पाप किये हम ॥ १३ ॥ निद्रावश शयन कराई। सुपने मधि दोष लगाई ॥ फिर जागि विषय वन धायो। नाना विध विषफल खायो ॥ १४ ॥ किये हार निहार विहारा। इनमें नहिं जतन विचारा ॥ विन देखी धरी उठाई। विन शोधी भोजन खाई ॥ १५ ॥ तब ही परमाद सतायो। बहु विध विकलप उपजायो ॥ कछु सुधि बुधि नाहिं रही है। मिथ्या मति छाय गई है ॥ १६ ॥ मरजादा तुम ढिग लीनी। ताहू मैं दोष जु कीनी ॥ भिन्न २ अब कैसे कहिये। तुम ज्ञान विषै सब पइये ॥ १७ ॥ हा हा मैं दुठ अपराधी। त्रसजीवन राशि विराधी ॥ थावरकी जतन न कीनो। उरमें करुणा नहिं लीनी ॥ १८ ॥ पृथिवी बहु खोद कराई। महलादिक जागां चिनाई। पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो। पङ्खातैं पवन विलोल्यो ॥ १६ ॥ हा हा मैं अदयाचारी। बहु हरितकाय जु विदारी ॥ या मधि जीवनिके खंदा। हम खाये धरि आनन्दा ॥ २० ॥ हा मैं परमाद बसाई। विन देखे अगनि

जलाई। तामधि जे जीव जु आये। ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥ बांधो अन रात्रि पिसायो। ईंधन बिन सोध्यो जलायो॥ झाड़ू ले जांगा बुहारी। चिवटो आदिक जीव विदारी॥ २२॥ जल छानि जीवानी कीनी। सोहू पुनि डारि जु दीनो॥ नहिं जल-थानक पहुंचायी। किरिया बिन पाप उपाई॥ २३॥ जल मल-मोरिन गिरवायो कृमि कुल बहु घात करायो॥ नदियनि बिच चीर धुवाये। कोसनके जीव मराये॥ २४॥ अन्नादिक शोध कराई। तामैं जु जीव निसराई॥ तिनका नहिं जतन कराया। गरियालै धूप डराया। २५॥ पुनि द्रव्य कमावन काज। बहु आरम्भ हिंसा साज॥कीये तिसनावश भारी। करुना नहिं रञ्च विचारी॥ २६॥ इत्यादिक पाप अनंता। हम कीने श्रीभगवंता॥ सन्तति चिरकाल उपाई। वानीतैं कहिय न जाई॥२७॥ ताको जु उदय जब आयो। नानाविध मोहि सतायो॥ फल भुंजत जिय दुख पावै। वचनैं कैसैं करि गावै॥ २८॥ तुम जानत केवल ज्ञानी। दुख दूर करो शिवथानी॥ हम तौ तुम शरन लही है। जिन तारन विरद सही है॥ २९॥ जो गांवपती इक होवै। सो भी दुखिया दुख खोवै॥ तुम तीन भुवनके स्वामी। दुख मेटो अंतरजामी॥ ३०॥ द्रोपदिको चीर बढ़ायो। सीता प्रति कमल रचायो॥ अंजनसे किये अकामी। दुख मेटो अन्तरयामी॥३१॥ मेरे अवगुन न चितारो। प्रभु अपनो विरद निहारो॥ सब दोष रहित करि स्वामी। दुख मेंटहु अन्तरजामी॥ ३२॥ इन्द्रादिक पदवी न चाहूं। विषयनि मैं नाहिं लुभाऊं॥ रागादिक दोष हरीजे। परमातम निजपद दीजे॥३३॥

धर्मचक्र चले आगे; रवि जहं लाजहीं। फुनि भृंगार-प्रमुख वसु; मंगल राजहीं॥ राजहीं चौदह चारु अतिशय; देवरचित सुहावने। जिनराज केवल ज्ञानमहिमा; अवर कहत कहा बने॥ तब इंद्र-आनि कियो महोच्छव; सभा शोभित अति बनी॥ धर्मोपदेश दियो तहां; उच्छरिय वानो जिनतनो॥ २०॥ क्षुधा तृषा अरु राग; द्वेष असुहावने। जनम जरा अरु मरण; त्रिदोष भयावने॥ रोग शोक भय विस्मय, अरु निद्रा घणो। खेद स्वेद मद मोह; अरति चिंता गणो॥ गणिये अठारह दोष तिनकरि; रहित देव निरञ्जनो॥ नव परमकेवल लब्धिमंडित; शिवरमणि-मनरञ्जनो॥ श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा; सुनत सब सुख पावहीं। भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥२१॥

श्री निर्वाण कल्याणक।

केवलदृष्टि चराचर; देख्यो जारिसो। भविजनप्रति उपदेश्यो; जिनवर तारिसो॥ भवभयभीत महाजन; शरणै आइया। रत्नत्रय-लच्छन शिवपंथ लगाइया॥ लगाइया पंथ जु भव्य फुनि; प्रभु तृतिय सुकल जू पूरियो। तजि तेरहें गुणथान योग; अयोग पथ-पग धारियो॥ पुनि चौदहें चौथे सुकलबल, बहत्तर तेरह हती। इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो, समयमें पंचमगती॥२२॥ लोक-शिखर तनुवात,-वलयमहं संठियो। धर्मद्रव्यविन गमन न; जिहिं आगे कियो॥ मयनरहित मूषोदर; अंबर जारिसो। किमपि हीन निजतनुते, भयो प्रभु तारिसो॥ तारिसो पज्जंय नित्य अविचल; अर्थपर्जय क्षणक्षयी। निश्चयनयेन अनन्तगुण विवहार, नय वसु गुणमयी॥ वस्तु स्वभाव विभावविरहित, शुद्ध परणति परिणयो।

चिद्रूप परमानन्द मंदिर, सिद्ध परमातम भयो ॥ १३ ॥ तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिर गये । रहे शेष नखकेशरूप; जे परिणये ॥ तब हरिप्रमुख चतुरविधि; सुरगण शुभ सच्या । माया मई नखकेश रहित जिनतनु रच्यो ॥ रचि अगर चन्दन प्रमुख; परिमल; द्रव्य जिन जयकारियो । पद पतत अग्निकुमार मुकटानल सुविधि संस्कारियो ॥ निर्वाण कल्याणक सुमहिमा सुनत सब सुख पाइयो । भण रूपचन्द्र सुदेव जिनवर जगति मङ्गल गाइयो ॥ मैं मतिहीन भक्तिवश भावना भाइयो । मंगल गीत प्रबन्ध सो निज गुण गाइयो ॥ जे नर सुनहिं बखानहीं स्वर धरि गावहीं । मन वांछित फल ते नर निश्चय पावहीं ॥ पावैं ते आठो सिद्धि नवनिधि मन प्रतीत जो आनिये । भ्रम भाव छूटें सकल मनके जिन स्वरूप ये जानिये । पुनि हरैं पातक टरत विघ्न सो होय मङ्गल नित नये । भण रूपचन्द्र त्रिलोकपति जिनदेव चौसंगहि गये ॥

॥ इति श्रीजिनेन्द्रनिर्वाण कल्याण मङ्गलं समाप्तम् ॥

३२ छहढाला

श्रीयुत पण्डित दौलतरामजी कृत—

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुं त्रियोग सम्हारिके ॥

प्रथमढाल—चौपाई छन्द १५ मात्रा ।

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त । सुख चाहैं दुखतें भयवन्त ॥ तातें दुखहारी सुखकार । कहैं सीख गुरु करुणाधार ॥ १ ॥ ताहि सुनो भवि मन थिर आन । जो चाहो अपनो कल्यान ॥ मोह महा मद

पियो अनादि । भूल आपको भरमत वादि ॥ २ ॥ तास भ्रमण की है बहु कथा पै कछु कहूं कही मुनि यथा ॥ काल अनन्त निगोद मंझार । बीतीं एकेन्द्री तन धार ॥ ३ ॥ एक श्वासमें अठदशबार । जन्मो मरो भरो दुख भार ॥ निकस भूमि जल पावक भयो । पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥ ४ ॥ दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी । त्यों पर्याय लहो त्रस तणी ॥ लट पिपील अलि आदि शरीर । धरधर मरो सही बहुपीर ॥ ५ ॥ कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो । मन बिन निपट अज्ञानो थयो । सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर । निबल पशु हति खाए भूर ॥६॥ कबहूं आप भयो बलहीन सबलनकर खायो अति दीन ॥ छेदन भेदन भूखरु प्यास । भार वहन हिम आतप त्रास ॥७॥ वध बंधन आदिक दुख घनै । कोट जीभकर जात न भनै ॥ अतिसंक्लेश भावतें मरो । घोर शुभ्र सागरमें परो ॥ ८ ॥ तहां भूमि परसत दुख इसो । बीछू सहस डसें नहिं तिसो ॥ तहां राध श्रोणित वाहिनी । कृमि कुल कलित देह दाहिनी ॥ ९ ॥ सेमरतरु जुत दल असिपत्र । असि ज्यों देह विदारें तत्र ॥ मेरुसमान लोह गलिजाय । ऐसी शीत उष्णता थाय ॥ १० ॥ तिल तिल करें देहके खण्ड । असुर भिड़ावें दुष्ट प्रचण्ड ॥ सिंधु नीरतें प्यास न जाय । तो पण एक न बूंद लहाय ॥ ११ ॥ तीन लोकको नाज जो खाय । मिटै न भूख कणा न लहाय ॥ ये दुख बहु सागरलों सहै । करम योगतें नरगति लहै ॥ १२ जननी उदर बसो नवमास । अङ्ग सकुचतें पाई त्रास ॥ निकसत जे दुख पाये घोर । तिनको कहत न आवे ओर ॥ १३ ॥ बालपनेमें ज्ञान न लह्यो । तरुण समय तरुणी रत रह्यो ॥ अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो । कैसे रूप लखें आपनो ॥१४॥

कभी अकाम निर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुर—तन धरै॥ विषय चाह दावानल दह्यो। मरत विलाप करत दुःख सह्यो॥१५॥ जो विमानवासी हू थाय। सम्यक्‌दर्शन बिन दुख पाय॥ तहँते चय थावर तन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै॥ १६॥

द्वितीय ढाल—पद्धरीछंद १५ मात्रा।

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण। वश भ्रमत भरत दुःख जन्म मर्ण॥ ताते इनको तजिये सुजान। सुन तिन संक्षेप कहूं बखान॥ १॥ जीवादि प्रयोजन भूततत्त्व। सरधै तिन मांहि विपर्ययत्व॥ चेतनको है उपयोग रूप। विन मूरति चिन्मूरति अनूप॥२। पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल। इनतैंन्यारी है जीव चाल॥ ताकूं न जान विपरीति मान। करि करै देहमें निज पिछान॥३॥ मैं सुखी दुखी मैं रङ्क राव। मेरो धन गृह गोधन प्रभाव॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। वे रूप सुभग मूरख प्रवीन॥४। तन उपजत अपनो उपजजान। तन नशत आपको नाश मान। रागादि प्रगट ये दुःख दैन। तिनहीको सेवन गिनत चैन॥५॥ शुभ अशुभ बंधके फल मझार। रति अरत करै निजपद बिसार। आतम हितहेतु विराग ज्ञान। ते लखे आपकूं कष्ट दान॥६॥ रोके न चाह निज शक्ति खोय। शिवरूप निराकुलता न जोय। या ही प्रतीत युत कछुक ज्ञान। सो दुखदायक अज्ञान जान॥७॥ इन जुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताकू जानो मिथ्या चरित्त॥ यो मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह। अब जे गृहीत सुनिये सुतेह॥८॥ जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोखैं चिर दर्शन मोह एव॥ अन्तर रागादिक धरें जेह। बाहर धन अंबरते सनेह॥९॥ धारे कुलिंग लहि महत भाव। ते कुगुरु जन्म जल

उमलनाव ॥ जे राग द्वेष मलकरि मलीन । बनितागदादि जुत चिन्ह चीन्ह ॥१०॥ तेहैं कुदेव तिनकी जु सेव । शठ करत न तिन भवभ्रमणछेव ॥ रागादि भाव हिंसा समेत । दर्वित त्रसथावर मरण खेत ॥११॥ जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म । तिस सरधे जीव लहे अशर्म ॥ यांकू गृहीत मिथ्यात जान । अब सुन ग्रहीत जो है अ-जान ॥१२॥ एकान्त बाद-दूषित समस्त । विषयादिक पोशक अ-प्रशस्त ॥ कपिलादि रचित श्रुतको अभ्यास । सोहै कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥ जो ख्यातिलाभ पूजादि चाह । धर करत विविध विध देहदाह ॥ आतम अनात्मके ज्ञान हीन । जे जे करनो तन करन छीन ॥१४॥ ते सब मिथ्या चारित्र त्याग । अब आतमके हितपंथ लाग ॥ जगजाल भ्रमणको देय त्याग । अब दौलत निज-आतमसु पाग ॥१५॥

तृतीय ढाल । जोगी रासा ।

आतमको हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये । आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिव मग लाग्यो चहिये ॥ सम्यक्-दर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो दुविधि विचारो । जो सत्यारथ रूपसो निश्चय, कारण सों व्यवहारो ॥१॥ परद्रव्यनतैं भिन्न आप मैं, रुचि सम्यक्त भला है । आप रूपको जानपनो सो, सम्यक ज्ञान कला है ॥ आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यक चारित्र सोई । अब विवहार मोख-मग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥ २ ॥ जीव अजीव तत्व अरु आश्रव, बंधरु संवर जानो । निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्योंको त्यों सरधानो ॥ है सोई समकित विवहारी, अब इन रूप बखानो । तिनको सुन सामान्य विशेषे, दिढ़ प्रतीति उर

आनो ॥ ३ ॥ बहिरातम अन्तरआतम परमातम जीव त्रिधा है। देह जीवको एक गिने, बहिरातम तत्व मुधा है ॥ उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके, अन्तर आतम ज्ञानी। द्विविधि संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥ ४। मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी। जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी ॥ सकल निकल परमातम द्वैविधि तिनमें घाति निवारी। श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥ ५ ॥ ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्ध महंता। ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता ॥ बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे। परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनंद पूजे ॥ ६ ॥ चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं। पुद्गल पंचवरण रस गंध दो फरसवसु जाके हैं ॥ जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी। तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी ॥ ७ ॥ सकलद्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो। नियत वर्तना निशिदिन सो व्यवहार काल परिमानो ॥ यों अजीव अब आश्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा। मिथ्या अविरत अरु कषाय पर,—माद सहित उपयोगा ॥ ८ ॥ ये ही आतमको दुखकारण, तातैं इनको तजिये। जीव प्रदेश बँधै विधिसों सो, बंधन कबहुं न सजिये ॥ शमदमतें जो कर्म न आवै, सो संवर आदरिये। तप बलतैं विधि झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥ ९ ॥ सकलकर्मतें रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी। इहिविधि जो सरधा तत्वनकी, सो समकित व्यवहारी ॥ देव जिनेन्द्र गुरू परिग्रह बिन, धर्मदयायुत सारो। येहू मान सम-

कितको कारण, अष्ट अंग जुत धारो ॥ १०॥ वसुमद टारि निवारि त्रिशठता, षट अनायतन त्यागो। शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो ॥ अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपहु कहिये। बिन जाने तैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये ॥११॥ जिन वचमें शंका न धार वृष, भवसुख वांछा भानै। मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्वकुतत्व पिछानै ॥ निजगुण अरु पर औगुण ढाँके, वा निजधर्म बढ़ावैं। कामादिक कर वृषतें चिगते, निज परको सु दिढ़ावै ॥ १२ ॥ धर्मीसो गऊ बच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावैं। इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खपावै ॥ पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै। मद न रूपको मद न ज्ञानको, धनबलको मद भानै ॥ १३ ॥ तपको मद न मद जु प्रभुताको; करै न सो निज जानै। मद धारै तो यही दोष वसु; समकितको मल ठानै ॥ कुगुरु कुदेव कुवृष सेवककी; नहिं प्रशंस उचरै है। जिन मुनि जिन श्रुति विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है ॥ दोष रहित गुणसहित सुधी जे; सम्यक्दर्श सजै हैं; चरित मोहवश लेश न संजम; पै सुरनाथ जजै हैं ॥ गेही पै गृहमें न रचे ज्यों; जलमें भिन्न कमल है। नगरनारिको प्यार यथा कादेमें हेम अमल है ॥ १५ ॥ प्रथम नरक विन षटभू ज्योतिष; वान भवन सब नारी। थावर विकलत्रय पशुमें नहिं; उपजत सम्यक्धारी ॥ तीनलोक तिहुंकाल माहिं नहिं; दर्शन सो सुखकारी। सकल धरमको मूल यही इस; बिन करनी दुखकारी ॥ १६ ॥ मोक्षमहलकी परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा। सम्यकता न लहै सो दर्शन; धारो भव्य पवित्रा ॥ दौल समझ सुन चेत

सयाने; काल वृथा मत खोवे। यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहिं होवै ॥१७॥

चतुर्थ ढाल।

दोहा — सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मयुत, जो प्रगटावन भान ॥

रोलाछन्द २५ मात्रा।

सम्यक साथै ज्ञान, होय पै भिन्न अराधो। लक्षण श्रद्धा जान दुहूमें भेद अबाधो॥ सम्यक कारण जान, ज्ञान कारज है सोई। युगपत होतेहू, प्रकाश दीपकतें होई॥ १॥ तास भेद दो है, परोक्ष परतक्ष तिन माहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतें उपजाहीं॥ अवधि ज्ञान मन पर्य्यय, दो है देश प्रत्यक्षा। द्रव्यक्षेत्र परिमाण, लिये जानै, जिय स्वच्छा ॥२॥ सकल द्रव्यके गुण, अनन्त पर्याय अनन्ता। जानें ऐकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता॥ ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारण। इहि परमामृत जन्म,जरामृत रोग-निवारन ॥३॥ कोटिजन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरैं जो। ज्ञानी के छिनमांहि त्रि-गुप्तितैं सहज टरैं ते॥ मुनिव्रत धार अनन्त, बार ग्रीवक उपजायो। पै निज आतम ज्ञान बिना सुखलेश न पायो॥ तातें जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजे। संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लख लीजे॥ यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनघो जिन-बानी। इह विधि गये न मिलैं, सुमनि ज्यों उदधि समानी ॥५॥ धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवैं। ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावे॥ तास ज्ञानको कारण स्वपर बिवेक बखानो। कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो ॥६॥ जो पूरब

शिव गए, जाहिं अब आगे जे हैं। सो सब महिमा ज्ञान-तणी मुनिनाथ कहे हैं ॥ विषय चाह दवदाह, जगत जन अरनि दझावे। तास उपाय न आन, ज्ञानघन – घान बुझावै ॥७॥ पुण्य पाप फल माहि, हरष विलखो मत भाई। यह पुद्गल पर्याय, उपजि विनशै थिर थाई ॥ लाख बातकी बात, यही निश्चय उर लावो। तोरि सकल जगदन्द—फन्द निज आतम ध्यावो ॥८॥ सम्यग्ज्ञानी होय वहुरि दृढ़ चारित लीजै। एकदेश अरु सकल देश, तसु भेद कहीजै। त्रसहिंसाको त्याग, वृथा थावर न संघारे। परवधकार कठोर निन्द्य, नहिं वयन उचारै ॥९॥ जलमृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता। निज बनिता बिन सकल, नारिसौं रहै विरत्ता ॥ अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखे। दस दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सोम न नाखे ॥ ताहूमें फिर ग्राम, गली ग्रह बाग बजारा। गमनागमन प्रमाण ठान, अन सकल निवारा। काहूके धनहानि, किसी जय हार न चिंतै। देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषीतैं ॥११॥ कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै। असि धनु हल हिंसोप—करन नहिं, दे जश लाधै ॥ राग द्वेष करतार, कथा कबहूं न सुनीजै। औरहु अनरथ दण्ड, हेतु अघ तिन्हें न कीजै ॥१२॥ धर उर समता भाव, सदा सामायक करिये। परव चतुष्टय माहि, पाप तज प्रोषध धरिये। भोग और उपभोग, नियमकर ममत निवारै। मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥१३॥ बारह व्रतके अतीचार, पाय पन पन न लगावै। मरण समय सन्यास, धार तसु दोष नशावे ॥ यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावे। तहंते चय नर जन्म, पाय मुनि ह्वै शिव जावे।

पञ्चम ढाल।

मनोहर छन्द १४ मात्रा।

मुनि सकल व्रती बड़ भागी। भवभोगनतैं वैरागी॥ वैराग्य उपावन माई। चिंतै अनुप्रेक्षा भाई॥१॥ इन चिन्तत समरस जागै, जिम ज्वलन पवनके लागै॥ जबही जिय आतम जानै। तबही जिय शिवसुख ठानै॥२॥ जोवन गृह गो धन नारी। हय गय जन आज्ञाकारी॥ इन्द्रीय भोग छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई॥३॥ सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यों हरि काल दले ते॥ मणिमंत्रतंत्र बहु होई। मरते न बचावे कोई॥४॥चहुंगति दुख जीव भरै हैं। परिवर्तन पञ्च करै हैं॥ सब विधि संसार असारा। तामें सुख नाहिं लगारा॥५॥ शुभ अशुभ करम फल जेते। भोगें जिय एकहिं तेते॥ सुत दारा होय न सीरी। सब स्वारथके हैं भीरी॥६॥ जलपय ज्यों जियतन मेला। पै भिन्न २ नहिं भेला॥ जो प्रगट जुदे धन धामा। क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा॥७॥ पल रुधिर राध मल थैली। कीकस वसादितैं मैली॥ नव द्वार बहैं घिनकारी अस देह करै किम यारी॥८॥ जो योगनकी चपलाई। तातैं ह्वै आश्रव भाई॥ आश्रय दुखकार घनेरे। बुद्धिवंत तिन्हें निरवेरे॥९॥ जिन पुण्य पाप नहिं कीना। आतम अनुभव चित दीना॥ तिनहीं विधि आवत रोके। संवर लहि सुख अवलोके॥१०॥ निज काल पाय विधि झरना। तासों निजकाज न सरना॥ तप करि जो कर्म खपावै। सोई शिवसुख दरसावै॥११॥ किनहूं न करो न धरै को। षट् द्रव्यमयी न हरै को॥ सो लोकमाहिं बिन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता॥१२॥ अंतिम ग्रीवकलोंकी हद। पायो अनन्त

विरिचौं पद। पर सम्यक्ज्ञान न लाधौ। दुर्लभ निजमें मुन साधौ ॥ १३ ॥ जे भाव मोहतैं न्यारे। दृगज्ञान वृतादिक सारे॥ सो धर्म जवैं जिय धारै। तबहीं सुख अचल निहारै ॥ १४ ॥ सो धर्म मुनिनकरि धरिये। तिनकी करतूति उचरिये॥ ताकूं सुनिये भवि प्राणी। अपनो अनुभूति पिछानी ॥ १६ ॥

अथ षष्टम ढाल—हरिगीता छंद २८ मात्रा।

षटकाय जीवन हननतैं सब, विध दरब हिंसा टरी। रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥ जिनके न लेश मृषा न जल तृण, हूं बिना दीयौं गहैं। अठदश सहस विधि शीलधर चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥१॥ अन्तर चतुर्दश भेद बाहर, संग दश-धातैं टलैं। परमाद तजि चऊ करम ही लखि, समिति ईर्यातैं चलैं॥ जग सुहितकर सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संशय हरै। भ्रम रोग हर जिनके बचन मुख, चन्द्रतैं अमृत झरै ॥२॥ छ्यालीस दोष बिना सुकुल; श्रावक तणे घर अशनको। लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन; पोषते तजि रसनको॥ शुचि ज्ञान संयम उपकरण लखि, कैं गहैं लखिकैं करैं। निर्जंतु थान विलोक तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं ॥३॥ सम्यकप्रकार निरोध मन वच, काय आतम ध्यावते। तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते॥ रस रूप, गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने। तिनमें न राग विरोध पंचेंद्रिय जयन पद पावने ॥४॥ समता सम्हारैं थुति उचारैं; बन्दना जिन देवको। नित करैं श्रुति रति करैं प्रतिक्रम तजें तन अहमेवको॥ जिनके न न्हौन न दंतधोवन, लेश अंबर आवरण। भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु शयन एकासन करण॥५॥

इकबार लेत अहार दिनमें खड़े अलप निज पानमें। कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यानमें॥ अरि मित्र महल मसान कंचन, कांच, निन्दन थुतिकरण। अर्घावतारण असि प्रहारण-में सदा समता धरण ॥६॥ तप तपैं द्वादश धरें वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा। मुनि साथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा॥ यों है सकल संयम चरित सुनिये स्वरूपाचरण अब। जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै परकी प्रवृति सब ॥७॥ जिन परम पैनी सुबुधि छेनी डार अन्तर भेदिया। वरणादि अरु रागादितें, निज भावको न्यारा किया॥ निजमाहिं निजके हेत निजकर, आपको आपै गह्यो। गुणगणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेदन रह्यो॥ जहं ध्यान ध्याता ध्येयको न, विल्कप बच भेद न जहां। चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहां॥ तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध, उपयोगकी निश्चल दशा। प्रगटी जहां दृगज्ञानव्रत ये, तीनधा एकै लशा॥ ६॥ परमाण नय निक्षेपको न उद्योत, अनुभवमे दिखे। दृग—ज्ञान—सुख-बल मय सदा नहिं; आन भाव जो मो विखै॥ मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं॥ चितपिंड चंड अखंड, सुगुन करंड च्युत पुनि कलनितैं॥ १०॥ यों चिन्त्य निजमें थिर भए तिन, अकथ जो आनन्द लह्यो। सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अह-मिन्द्र कै नाहीं कह्यो॥ तबही शुकल ध्यानाग्नि करि चउ, घात विधि कानन दह्यो। सब लख्यो केवलज्ञान करि भवि,लोकको शिवमग कह्यो ॥११॥ पुनि घाति शेष अघात विधि, छिनमाहिं अष्टम भू बसे। बसु कर्म विनसै सुगुण बसु, सम्यक्त आदिक सब लसै॥ संसार खार अपार पारावार,तरि

तीरहिं गये। अविकार अचल अरूप शुद्ध, चिद्रूप अविनाशी भये ॥ १२ ॥ निजमाहिं लोक अलोक गुण, पर्याय प्रतिबिम्बित थये। रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परणये ॥ धनि धन्य है जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमण पञ्च, प्रकार तजि वर सुख लिया ॥ १३ ॥ मुख्योपचार दुभेद यों वड़, भागि रत्न त्रय धरें। अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन,सुजशजल-जगमल हरें ॥ इम जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरों। जबलों न रोग जरा गहै तब लों जगत निजहित करों ॥ १४॥ यह राग आग दहै सदा ताते समामृत पीजिये ॥ चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद लीजिये ॥ कहा रच्यो पर पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै। अब दौल होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥ ५ ॥

दोहा—इक नव वसु इक वर्षकी, तीज सुकुल बैशाख। करयो तत्व उपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख ॥ १ ॥ लघु धी तथा प्रमादतें, शब्द अर्थकी भूल। सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव कूल ॥ २ ॥

३३ समायिक पाठ भाषा।

अथ प्रथम प्रतिक्रमण कर्म।

काल अनन्त भ्रम्यो जगमें सहियो दुख भारी। जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी ॥ कोटि भवांतरमाहिं मिलन दुर्लभ

सामायक धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुख दायक ॥ १ ॥ हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मैं अब। ते सब मनवचकाय योगकी गुप्ति बिना लभ ॥ आप समीप हजूरमाहिं मैं खड़ो खड़ो अब। दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुख देहिं जब ॥ २ ॥ क्रोध मान मद लोभ मोह मायावश प्रानी। दुःख-सहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥ बिना प्रयोजन एकेंद्रिय बिति चउ पंचेंद्रिय। आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥ ३ ॥ आपसमें इक ठोर थापि करि जे दुख दीने। पेलि दिये पगतलें दाबकरि प्राण हरीने ॥ आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक। अरज करौं मैं सुनो दोष मेटो सुखदायक ॥ ४ ॥ अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय। तिनके जे अपराध भये ते छिमा छिमा किय ॥ मेरे जे अब दोष भये ते क्षमों दयानिधि। यह पड़िकोणो कियो आदि षट कर्ममांहि विधि ॥५॥

अथ द्वितीय प्रत्याख्यानकर्म।

जा प्रमादवश होय विराधे जीव घनेरे। तिनको जो अपराध भयो मर अघ ढेरे ॥ सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै। जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख दुःख न लाधै ॥६॥ मैं पापी निर्लज्ज दया-करि हीन महाशठ। किये पाप अति घोर पापमति होय चित्त दुठ ॥ निंदूं हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं। सबविध धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूं ॥७॥ दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी। सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धाधारी ॥ जिनवचनामृतधार समावर्तै जिनवानी। तौहू जीव संहारे धिक धिक धिक हम जानी ॥८ इन्द्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब। अज्ञानी जिम करे

तिसो विधि हिंसक ह्वै अब ॥ गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले। ते सब दोष किये निन्दू अब मनबच तोले ॥६॥ आलोचन-विध थकी दोष लागे जू घनेरे। ते सब दोष बिनाश होउ तुमतैं जिन मेरे ॥ बार बार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता। ईर्षादि-कतैं भये निन्दिये जे भयभीता ॥१०।

तृतीय सामायिक कर्म।

सब जीवनमैं मेरे समताभाव जग्यो है। सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है ॥ आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांड़ि करिहूं सामायक ॥ संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक ॥ ११ ॥ पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति। पांचहि थावर-माहिं तथा त्रस जीव बसें जित ॥ बे इन्द्रिय तिय चउ पंचेंद्रिय-मांहिं जीव सब। तिनमें क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अब ॥१२॥ इस अवसर मैं मेरे सब सम कञ्चन अरु त्रण। महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहि सम गण ॥ जामन मरन समान जानि हम समता कीनो। सामयिकका काल जितै यह भाव नवीनो ॥ १३ ॥ मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनौ ॥ और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनौ ॥ मात पिता सुत बंधु मित्र त्रिय आदि सबै यह। मोतें न्यारे जानि जथारथरूप कर्यो गह ॥ १४ ॥ मैं अनादि जगजालमाहिं फंस रूप न जान्यो। एकेंद्रिय दे आदि जन्तुको प्राण हराण्यो ॥ ते अब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी भवभवको अपराध क्षमा कोज्यो करि मरजी ॥१५॥

अथ चतुर्थ स्तवनकर्म।

नमूं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्मको। संभव भव-

दुखहरण करण अभिनन्द शर्मको ॥ सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पारकर। पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीतिधर ॥१६॥ श्रीसुपार्श्व कृत पास नाश भव जास शुद्ध कर। श्रीचन्द्रप्रभ चन्द्र-कान्तिसम देहकान्ति धर। पुष्पदन्त दमि दोषकोश भवि पोष रोषहर। शीतल शीतल करन हरन भवताप दोषहर ॥ १७ ॥ श्रेय रूप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन। वासुपूज्य शतपूज्य वास-वादिक भवभय हन ॥ विमल विमल मतिदेन अन्तगत हैं अनन्त जिन। धर्म शर्म शिवकरण शांति जिन शान्तिविधायिन ॥ १८ ॥ कुन्थ कुन्थ मुख जीवपाल अरनाथ जाल हर। मल्लि मल्लसम मोह-मल्ल मारण प्रचार धर ॥ मुनिसुव्रत व्रत करण नमत सुरसंघहि नमि जिन। नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ मांहि ज्ञान धन ॥१६॥ पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्षरमापति। वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत ॥ याविध मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर। स्तऊं नमूं हूं बार बार बंदौं शिवसुखकर ॥२०॥

पञ्चम वन्दनाकर्म।

वन्दू मैं जिनवीर धीर महावीर सु सन्मति वर्द्धमान अतिवीर बन्दहों मनवचतनकृत ॥ त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदू। बन्दू नितप्रति कनकरूपतनु पाप निकन्दू ॥२१॥ सिद्धारथ नृपनन्द द्वंद्व दुखदोष मिटावन। दुरित दवानल ज्वलितज्वाल जगजीव उधारन ॥ कुण्डलपुर करि जन्म जगतजिय आनन्दकारन। वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन ॥२२॥ सप्त हस्त तनु तुङ्ग भङ्ग कृत जन्म मरण भय। बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥ दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन। आप बसे शिवमाहिं

नाहि बन्दों मनवचतन ॥ २३ ॥ जाके बन्दनथकी दोष दुख दूरहि जावै। जाके बन्दनथकी मुक्ति तिय सम्मुख आवै ॥ जाके बन्दन-थकी बंद्य होवैं सुरगनके। ऐसे वीर जिनेश बन्दिहूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥ सामायिक षटकर्ममाहिं बंदन यह पञ्चम वन्दे वीरजिनेन्द्र इन्द्रशतबन्द्य वन्द्य मम ॥ जन्म मरण भय हरो करो अघ शांतशांत मय। मैं अघ कोष सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥२५॥

छट्ठा कायोत्सर्गकर्म।

कायोत्सर्गविधान करूं अन्तिम सुखदाई। कायत्यजन मय होय काय सबको दुखदाई ॥ पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं। जिनगृह वंदन करूं हरूं भवपापतिमिर मैं ॥२६॥ शिरोनतीमें करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं। आवर्त्तादिक क्रिया करूं मनबच मद हरिकै ॥ तीन लोक जिन भवनमांहि जिन हैं जु अकृत्रिम। कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धद्वीपमाहीं वंदौं जिम ॥२७॥ आठ कोडिपरि छप्पन लाख जु सहस सत्याणूं। चारि शतकपरि असी एक जिनमंदिर जाणूं ॥ व्यंतर ज्योतिषमांहि संख्यरहिते जिनमन्दिर। जिनगृह वन्दन करूं हरहु मम पाप सघकर ॥ २८ ॥ सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटायक। सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री-दायक ॥ श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक। यह आ-वश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥ २९ ॥ जे भवि आतम काज करण उद्यमके धारी। ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥ राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब। बुध महाचन्द्र वि-लाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥३०॥ इति ॥

पशुवन पर दृष्टि परै नमत सुरनर मुनी-न्द्रादिक करत सीस नैवा ॥ ३ ॥ प्रभुके चरणार्विन्द् जपत हैं जवाहरचन्द्र कर जोरें ध्यान धरें चाहत नित सेवा ॥ ४ ॥

४६ दौलतकृत प्रभाती

पारस जिन चरण निरखि हरष ज्यों लहायो। चितवत चन्द्रा चकोर ज्यों प्रमोद् पायो ॥ टेक ॥ ज्यों सुनि घनघोर सोर मोरके मन हरष ओर रंक निधि समाज राज पाय मुदित थायो ॥१॥ ज्यों जन चिर क्षुधित कोय भोजन लह सुखित होय भेषज मद हरन पाय आतुर हरषायो ॥ २ ॥ बासर धनि आज दुरित दुरे फिर सुकृत आज शान्ताकृत देखि महामोह तम बिलायो ॥३॥ जाके गुन जानन शोभानन भव कानन इमि जान दौल सरन आय शिव सुख ललचायो ॥ ४ ॥

४७ दौलतकृत प्रभाती

निरखत जिन चन्द्र वदन सुपद स्वरुचि आई ॥ टेक-॥ प्रगटी निज आनकी पिछान ज्ञान भानकी कला उद्योत होत काम यामि-नी पलाई ॥१॥ सास्वत आनन्द स्वाद पायो बिनसो बिषाद् मानन अनिष्ट इष्ट कल्पना नसाई ॥ २ ॥ साधी निज साधकी समाधि मोह व्याधिकी उपाधि कविराधिके अराधना सुहाई ॥३॥ धन दिन छिन आज सुगुन चिंते जिनराई। सुधरो सब काज दौल अचल रिद्धि पाई ॥ ४ ॥

४८ णमोकार महिमा प्रभाती

प्रातकाल मंत्र जपो णमोकार भाई। अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदयमें धराई ॥ टेक ॥ नर भव तेरो सुफल होत पातक टर जाई। विघन

जासु दूर होत संकटमें सहाई ॥ १ ॥ कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्ताम-णि जाई । ऋद्धि सिद्धि पारस तेरे प्रगटाई ॥ २ ॥ मंत्र जन्त्र तन्त्र सब जाही बनाई। सम्पति भण्डार भरे अक्षय निधि आई ॥३ ॥ तीन लोक माहिं सार वेदनमें गाई । जगमें प्रसिद्ध धन्य मंगलोक भाई ॥ ४ ॥

४६ भागचन्दकृत प्रभाती

परणति सब जीवनकी तीन भांति वरणी। एक पुण्य एक पाप एक राग हरणी ॥ टेक ॥ जामें शुभ अशुभ बन्द वीतराग परणति भव समुद्र तरणी ॥ १ ॥ छांड़ि अशुभ क्रिया कलाप मत करो कदाचि पाप शुभमें न मगन होय अशुद्धता विसरणी ॥ २ ॥ यावत ही शुभोपयोग तावत ही मन उद्योग तावत ही करण योग कही पुण्य करणी ॥३॥ भागचन्द्र जा प्रकार जीव लहे सुख अपार याको निरधार स्यादवादकी उचरणी ॥४॥

५० जैनदासकृत प्रभाती

उठि प्रभात पूजिये श्री आदिनाथ देवा। आलसको त्याग जागि पूजा विधि मेवा ॥ टेक ॥ जल चन्दन अक्षत प्रीति सम लेवा। पुष्पते सुवास होय काम जरि जेवा ॥ १ ॥ नैवेद्य उज्ज्व-ल करि दीप रतन लेवा। धूपते सुगन्ध होय अष्ट कर्म खेवा ॥ २ ॥ श्रीफल बादाम लोंग डोंडा शुभ मेवा। उज्वल करि अर्घ्र पूजि श्रीजिनेन्द्र देवा ॥३॥ जिनजी तुम अर्ज सुनो भवदधि उत-रेवा। जैनदास जन्म सुफल भगति प्रभू एवा॥ ४ ॥

५१ भवानीकृत प्रभाती

ताण्डव सुरपतिने जहां हर्ष भाव धारी। ॥ टेक ॥ रुनु रुनु

रुनु नूपुर ध्वनि ठुमकि २ पैंजन पग झुन झुन झुन किन छवि लगति अति प्यारी ॥ १ ॥ अ न न न न न सार दानि स न न न न किन्नरान अ घ घ घ गंधर्व सर्व देत जहां तारी ॥२॥ पं पं पं पग झपटि फं फं फ फ न न न न न वं व मृदङ्ग बाजे बीना धुन सारी ॥ ३ ॥ अ द द द द द विद्याधर दि दि दि दि दि दि देव सकल दास भमानी ज्यो कहें जिन चरनन बलिहारी ॥ ४ ॥

५२ मानिककृत भजन

नहीं रुचे औरु छवि नैननमें, तेरी शान्ति छवी मन बस गई रे ॥टेक॥ निर्विकार निर्ग्रंथ दिगम्बर देखत कुमति विनसि गई रे ॥ १ ॥ चिर मिथ्यातम दूर करनको चन्द्र कला सो दरश रही रे ॥२॥ मानिक मन मयूर हरषनकों मेघ घटा सो दरश रही रे ॥३॥

५३ नवलकविकृत खम्माच

आज कोई अद्भुत रचनारचो ॥ टेक ॥ समोशरण शोभा देखनको होड़ा होड़ी मची ॥ १ ॥ स्वर्ग विमान तले छवि जाके देखत मनन खिची ॥ २ ॥ जिन गुण स्वादत रसिया परनकी रीझन जात मचो ॥ ३ ॥ नवल कहे ऐसो मन आवे हष धार कर नची ॥ ४ ॥

५४—मोहनलालकृत झंझोटी ।

देखि सखी छवि आज भलो रथ चढ़ि यदुनन्दन आवत हैं ॥ टेक ॥ तीन छत्र माथे पर सोहैं त्रिभुवननाथ कहावत हैं ॥ १ ॥ मोर मुकट केसरिया जामा चौसठ चमर ढुरावत हैं ॥ २ ॥ ताल मृदङ्ग साज सब बाजत आनन्द मङ्गल गावत हैं ॥ ३ ॥ मोहनलाल दास चरननकी झुकि झुकि शीस नवावत हैं ॥४॥

५५ बिहारीकृत—राग देश।

आज जिनराज दरशनसे भयो आनन्द भारी है ॥ टेक ॥ लखे ज्यों मोर घन गर्जे सुनिधि पाये भिखारी है। तथा मो मोहकी वार्ता नहीं आती उचारी है ॥१॥ जगतके देव सब देखे क्रोध भय लोभ भारी है ॥ तुम्हीं दोषावरण बिन हो कहा उपमा तिहारी है ॥२॥ तुम्हारे दर्शबिन स्वामी भई चहुंगतिमें ख्वारी है। तुम्हीं पद कंज नमते ही मोहनी धूल झारी है ॥३॥ तुम्हारी भक्तिसे भवजन भये सब सिन्धु पारी हैं। भक्ति मोहि दीजिये अविचल सदा याचक बिहारी है ॥४॥

५६ मानिककृत—सोरठा।

ज्ञानी पिया क्यों बिसरे निज देश। कुमति कुरमिनी सौत संग राचे छाय रहे परदेश ॥ टेक ॥ अनन्तकाल परदेशनि छाये पाये बहुत कलेश। देश तुम्हारो सुपद समारो त्रिभुवन होउ नरेश ॥१॥ भ्रम मद पाय छकाय रहो घन ज्ञान रहो नहिं लेश। दुखी भये बिल्लात फिरत हो गति २ धरि दुरिभेश ॥२॥ यह संसार जानि लख सुख नहीं रंचक लेश। मानिक काल लब्धि पावस लहि सुमति हाथ उपदेश ॥ ३ ॥

पिल्लू।

स्वामी मुजरा हमारा लीजे ॥ टेक ॥ तुम तो वीतराग आनंद घन हमको भी अब कीजे ॥ १ ॥ जगके देव सब रागी द्वेषी यासे निज गुण दीजे ॥२॥ आदि देव तुम समानको वेग अचल पद दीजे ॥

५७ हीरालाल कृत रेखता

भगवान आदिनाथ जिन सों मन मेरा लगा। आराम मुझे

होत दुःख वंशसे भगा ॥ टेक ॥ मरु देवी नन्द धर्म कन्द कुलमें सुर उगा । नृप नाभिराजके कुमार नमत सुर खगा ॥१॥ युगका निवार धर्मको संसारको तगा । वसु कर्मको जराय शिव पन्थमें लगा ॥२॥ अब तो करो शिताब मिहरबान दिल लगा । कहैं दास होरालाल दीजे मुक्तिका मगा ॥३॥

५८ हजारी कृत—गजल ।

ख्याल कर दिल मझार चेतन अजब करमने भ्रमाई गतियां ॥टेक॥ निगोद बस कर सुबोध खोया त्रिजग व नारक बनस्पतियां । कभी मनुष वा कभी सुरग वा अनादि ते दिन बिताई रतियां ॥२॥ यह दुःख भर २ यतीम हूवा न गोरकी कहुं सुनाई बतियां । पड़ा हूं अब तो उसीके दर पर लगें हजारी न यम की पतियां ॥३॥

५९ हजारीकृत—लावनी ।

प्रभू भवसागर पार करो, मेरे रागादिक शत्रु हरो ॥ टेक॥ तुम्हीं हो नित्य निरञ्जनदेव । कर इन्द्रादिक थारी सेव ॥ नामसे पाप टरें स्वयमेव । अरज चित दीजे हमारी एव ॥ दोहा ॥ तुम सुमरनसे नाथजी, सीजे हमरो काज ॥ तुम देवनके देव हो, लोक शिखिर महाराज ॥ जगतमें तारन बिरद धरो । मेरे रागादिक० ॥१॥ जन्म मरणादि अनल भारी । चरण श्रुति झरत सलिल झारी ॥ तासु मिट जात तापकारी । होत सुख अविकल अविकारी ॥ दोहा ॥ ऐसे तुम गुण अचिन्त वर, तासम कीजे मोय । मोहादिक अरि अति प्रबल तिनको दीजे खोय ॥ आज तुम देखत काज सरो । मेरे० ॥२॥ कर्म वसु अगणित दुखदाई । तासु बश

जन बसे शिव अब बसत फिर बसि हैं सही। दौलत खरचि पर विरचि सद्गुरु सीख नित उर धर यही ॥ ११ ॥ इति ॥

चौथा अध्याय

६४ फूलमाल पच्चीसी।

दोहा—जैन धरम त्रेपन किया, दया धरम संयुक्त।
यादों वंश विषैं जये, तीन ज्ञान करि युक्त ॥१॥

भयो महोत्सव नेमिको, जूनागढ़ गिरनार। जाति चुरासिय जैनमत जुरे क्षोहनी चार ॥ २ ॥

माल भई जिनराजकी, गूंथी इन्द्रन आय ॥
देशदेशके भव्य जन; जुरे लेनको धाय ॥ ३ ॥

छप्पय—देश गौड़ गुजरात चौड़ सोरठि बीजापुर। करनाटक कशमीर मालवो अरु अमेरधुर ॥ पानीपत हींसार और बैराट महा लघु। काशी अरु मरहट्ट मगध तिरहुत पट्टन सिंधु॥ तह वंग चंग बंदर सहित; उदधि पार लौं जुरिय सब। आए जु चीन मह चीन लग, माल भई गिरनारि जब ॥४॥

नाराच छन्द।

सुगन्ध पुष्प वेलि कुंदि केतकी मगायकें। चमेली चंप सेवती जुही गुही जु लायकें ॥ गुलाब कंज लायची सबै सुगन्ध जातिके। सुमालती महा प्रमोद लै अनेक भांतिके ॥ ५ ॥ सुवर्ण तारपोई बीच मोति लाल लाइया। सु हीर पन्न नील पीत पद्म

जोति छाइया ॥ शची रची विचित्र भाँति चित्त देवनांइ है। सुइ-न्द्रने उछाहसों जिनेन्द्रको चढ़ाई है ॥ ६ ॥ सुमागहीं अमोल माल हाथ जोरि बानियें। जु री तहां चुरासि जाति रावराज जानिये ॥ अनेक और भूपलोग संठसाहुको गनें। कहालु नाम वर्णियें सुदे-खते सभा बनें ॥७॥ खण्डेलवाल जैसवाल अग्रवाल आइया। व घेरवाल पोरवाल देशवाल छाइया ॥ सहेलवाल दिल्लिवाल सेत-वाल जातिके। बढ़ेलवाल पुष्पभाल श्री श्रीमाल पांतिके ॥८॥ सु ओसवाल पल्लिवाल न रुवाल चौसखा। पद्मावतीय पोरवाल ढूं-ढरा अठेसखा। गगेरवाल बंधुराल तोर्णवाल सोहिला। करिंद-वाल पल्लिवाल मेडवाल खोहिला ॥६॥ लमेंचु और माहुर माहेसुरी उदार हैं सुगोलवार गोलपूर्व गोलहूं सिंघार हैं ॥ बंधनौर मागधी विहारवाल गूजरा। सुखण्ड राग होय और जानराज धूसरा ॥१०॥ भुराल और सोरठी मुराल और चितौरिया। कपोल सोमराठ वर्ग हूमड़ा नागौरिया ॥ सीरीगहोड़ भंडिया कनौजिया अजोधिया। मिवाड़ मालवान और जोधड़ा समोधिया ॥११॥ सुभट्टनेर रायबल्ल नागरा रुधाकरा। सुकंथ राउ जालुराउ वालमीक भाकरा ॥ परवार लाड़ चोड़ कोड़ गोड़ मोड़ संभरा। सु खंडिआत श्री खंडा चतुर्थ पञ्चमं भरा ॥१२॥ सु रत्नाकार भोजकार नारसिंघ हैं पुरी। सु जम्बूवाल और क्षेत्रब्रह्म वैश्य लौ जुरी ॥ सु आइ हैं चुरासि जाति जैनधर्मकी धनी। सबै विराजी गोटियों जु इन्द्रकी सभा बनी ॥१३॥ सुमाल लेनको अनेक भूपलोग आवहीं। सु एक एकतें सुमाग मालको बढ़ा वहीं ॥ कहैं जु हाथ जोरि जोरि नाथ माल दीजिये। मंगाय देउं हेमरत्न सो भण्डार कीजिये ॥ १४ ॥

बघलबाल बाकड़ा हजार बीस देत हैं। हजार दे पचास परवार फेरि लेन हैं। सु जैसवाल लाख देत माल लेत चोंपसों। जु दिल्लिवाल, दोय लाख देत हैं अगोपसों ॥ १५ ॥ सु अग्रवाल बोलिये जु माल मोह दीजिये। दिनार देहुं एक लक्ष सो गिनाय लीजिये खंडेलवाल बोलिया जु दोय लाख देउगो। सुबाँटिके तमोल मैं जिनेन्द्र माल लेउंगो ॥ १६ ॥ जु-संभरी कहैं सु मेरि खानि लेहु जायकें। सुवर्ण खानि देत हैं चितौड़िया बुलायके ॥ अनेक भूप गांव देउ रायसो चंदेरिका। खजान खोली कोठरीं सु देत हैं अमेरिका ॥१७॥ सुगौड़वाल यों कहै गयन्द बीस लीजिये। मढ़ाय देव हेमदंत माल मोहि दीजिये ॥ परमारके तुरंग साजि देत हैं बिना गिने। लगाम जोन पाहुड़े जड़ाउ हेमके बने ॥१८॥ कनौजिया कपूर देत गाड़िया भरायकं। सुहीरा मोती लाल देत ओशवाल आयके ॥ सु हूंमड़ा हंकारहीं हमें न माल देउगे। भराइये जिहाजमें कितेक दाम लेउगे ॥१९॥ कितेक लोग आयके खड़ेते हाथ जोरिकें। कितेक भूप देखिके चले जु बाग मोरिकें ॥ कितेक सूप यों कहैं जु केसे लक्षि देत हो। लटाय माल आपनों सु फूलमाल लेत हो ॥ २० ॥ कई प्रवीन श्राविका जिनेन्द्रको बधावहीं। कई सुकंठ रागसों खड़ी जु माल गावहीं। कईसु नृत्यकों करै लहैं अनेक भावहीं। कई मृदंग तालपै सु-अंगको फिरावहीं ॥ २१ ॥ कहैं गुरू उदार धी सु यों न माल पाइये ॥ कराइये जिनेन्द्र यज्ञ बिंबहूं भराइये ॥ चलाइये जु संघ जात संघही कहाइये। तबै अनेक पुण्यसों अमोल माल पाइये ॥ २२ ॥ संबोधि सर्व गोठिसो गुरू उतारकें लई। बुलायकें

जिनेन्द्रमाल संघ रायको दई। अनेक हर्षसों करैं जिनेंद्र तिलक पाइये। सुमाल श्रीजिनेंद्रकी बिनोदीलाल गाइये ॥ २३ ॥

दोहा—माल भई भगवन्तको, पाई संग नरिन्द। लालविनोदी उच्चरैं सबको जयति जिनंद ॥ २४ ॥ माला श्री जिनराजकी, पावे पुण्य संयोग। यश प्रगटै कीरति बढ़ै,धन्य कहैं सब लोग ॥२५॥ इति

६५ पुकार पच्चीसी।

दोहा—जै यह भव संसारमें, भुगते दुःख अपार।
सो पुकार पच्चीसिका, करैं कविन इक ढार ॥

तेईसा छन्द।

श्री जिनराज गरीब निवाज सुधारन काज सबै सुखदाई। दीनदयाल बड़े प्रतिपाल दया गुणमाल सदा शिर नाई ॥ दुर्गति टारन पापनिवारन हो भवतारन को भव ताई। वारही वार पुकारतु हों जनकी विनती सुनिये जिनराई ॥ १ ॥ जन्म जरा मरणो त्रय दोष लगे हमको प्रभु काल अनाई। तासु नसावनको तुम नाम सुनो हम वैद्य महा सुखदाई ॥ सो त्रय दोष निवारनको तुम्हरे पद सेवतु हों चित ल्याई। वारही० ॥ २ ॥ जो इक है भवको दुख होय तो राख रहों मनको समझाई। यह चिरकाल कुहाल भयो अब लों कहुं अन्त परो न दिखाई ॥ मो पर या जग मांहि कलेश परे दुख घोर सहे नहिं जाई। वारही० ॥ ३ ॥ देख दुखी पर होत दयाल सुहै इक ग्रामपती शिर नाई। हो तुम नाथ त्रिलोकपती तुमसे हम अर्ज करो शिर नाई ॥ मो दुख दूर करो भवके बहु कर्मन ते प्रभु लेउ छुड़ाई। वारही० ॥ ५ ॥ कर्म बड़े

रिपु हैं हमरे हमरी बहु हीन दशा कर पाई। दुःख अनन्त किये हमको हर भाँतिन भांतिन खाद लगाई॥ मैं इन बैरिनके बश है करिके भटको सु कहो नहिं जाई। बारही० ॥ ५ ॥ मैं इस ही भव काननमें भटको चिरकाल सुहाल गमाई। किञ्चित् ही तिलसे सुखको बहु भांति उपाय करे ललचाई॥ चार गतें चिर मैं भटको जहां मेरु समान महा दुखदाई। बारही० ॥ ६ ॥ नित्य निगोद अनादि रहो त्रसके तनकी जहां दुर्लभताई। ज्यों क्रम सो निकसो वह ते त्यों इतर निगोद रहो चिरछाई॥ सूक्ष्म बादर नाम भयो जब हीं यह भांति धरी पर्यायी। बारही० ॥ ७ ॥ जबहीं पृथ्वी जल तेज भयो पुनि मारुत होय बनस्पति काई। देह अघात धरी जब सूक्ष्म घातत बादर दीरघताई॥ एक उदै प्रत्येक भयो सह धारण एक निगोंद बसाई। बारही० ॥ ८ ॥ इन्द्रिय एक रही चिरमें कब लब्धि उदै स्वयं उपशमताई। वे त्रय चार धरी जब इन्द्रिय देह उदै विकलत्रय आई॥ पंचन आदि किधौं पर्यन्त धर इन इन्द्रियके त्रस काई। बारही० ॥ ६ ॥ काय धरी पशुकी बहु वार भई जल जन्तुनकी पर्याई। जो थल मांहि अकाश रहो चिर होय पखेरू पङ्ख लगाई॥ मैं जितनी पर्याय धरीं तिनके वरणे कहुं पार न पाई। बारहो० ॥ १० ॥ नरक मझार लियो अवतार परौ दुख भार न कोई सहाई। जो तिलसे सुख काज किये अघते सब नरकनमें सुधि आई॥ ता तियके तनकी पुतली हमरे हियरा करि लाल भिराई॥ बारही० ॥ ११ ॥ लाल प्रभा सु मही बह है अरु शकर रेत उन्हार बताई। पङ्क प्रभा जु धुआंवत है तमसी सु प्रभासु महातम ताई॥ जोजन लाख जु षोड़स पिण्ड तहां इकही

अरुवाह। वनस्पतीमें बसे शुभाय॥ ऐसी गतिमें बहु दुख भरना। एतेपर एता क्या करना॥ ५॥ केतिक काल यहां ही गयो। तहंसे कइ विकलत्रय भयो॥ ताको दुख कुछ जाय न वरना। एतेपर एता क्या करना॥ ६॥ पशु पक्षीकी काया पाई चेतन तहां रहो लपटाई॥ बिन विवेक कहो क्यों तरना। एते पर एता क्या करना॥ ७॥ इम तिर्यंच महा दुख सहे। सो काहू ते जाय न कहे॥ पाप कर्मसे इस गति परना। एते पर एता क्या करना॥ ८॥ बहुरो पड़ो नर्कके माहीं। सो दुख कैसे वरणों जाहीं॥ भू दुर्गन्ध नाक जहां सरना। एतेपर एता क्या करना॥६॥ अग्नि समान तप्त भू कहीं। कितहू शीत महा बन रही॥ शूली सेज क्षणक ना डरना। । एते पर एता क्या करना॥ १०॥ परम अधर्मी असुर कुमार। छेदन भेदन करे अपार॥ तिनके वशसे नाहिं उबरना। एतेपर एता क्या करना॥ ११॥ रंचक सुख जहं जियको नाहीं। बसते यहां नर्क गति माहीं॥ देखत दुष्ट महा भय भरना। एतेपर एता क्या करना॥ १२॥ पुण्य योग भयो सुर अवतार। फिरत २ इस जगति मझार॥ आवत काल देख थर हरना। एतेपर एता क्या करना॥ १३॥ सुर मन्दिर अरु सुख संयोग। निशि दिन मन वांछित वर भोग॥ क्षण इक माहिं तहांसे टरना। एतेपर एता क्या करना॥ १४॥ बहुत जन्म तक पुण्य कमाय। तब कहुं लही मनुज पर्याय॥ तामें लग्यो जरा-दिक मरना। एतेपर एता क्या करना॥ १५॥ धन योवन सब ही ठकुराई। कर्म योगसे नव निधि पाई॥ सो स्वप्नान्तर कैसा झरना। एतेपर एता क्या करना॥ १६॥ इन विषयनके तो दुख

दीनों। तबहूं तू तिनहीं रस भीनो ॥ तनक विवेक हृदय ना धरना। एतेपर एता क्या करना ॥ १७ ॥ पर संगति कितना दुख पावे। तब भी तोकों लाज न आवे ॥ वासन संग नीर ज्यों जरना। एतेपर एता क्या करना ॥ १८ ॥ देव धर्म गुरु शास्त्र न जाने। स्वपर विवेक न उरमें आने ॥ क्यों होसी भवसागर तरना। एतेपर एता क्या करना ॥ १९ ॥ पांचों इन्द्रिय अति बटमारे। परम धर्म धन मूसत हारे ॥ तांय पिवहिं एता दुख भरना। एतेपर एता क्या करना ॥ २० ॥ सिद्ध समान न जाने आपयासे तोहि लगत है पाप ॥ चोल देख घट पटहि बघरना। एतेपर एता क्या करना ॥२१॥ श्रीजिन बचन अमिय रस वानी। पीवे नाहिं मूढ़ अज्ञानी ॥ जासे होय जन्म मृत्यु हरना। एते पर एता क्या करना ॥२२॥ जो चेते तो है यह दाव। नातर वैठा मङ्गल गाव। फिर यह नर भव वृक्ष न फरना। एते पर एता क्या करना ॥२३॥ भैया बिनवे बारम्बार। चेतन चेत भलो अवतार। हो दूलह शिव रानी वरना। एते पर एता क्या करना ॥२४॥

दोहा—ज्ञान मई दर्शन मई चारित्र मई सुभाय। सो परमातम ध्याइये यही मोक्ष सुखदाय ॥ २५ ॥ सत्रह सौ इकतालीसके मार्ग शीर्ष निरपक्ष। तिथि शङ्कर गण लीजिये शोरविचार प्रत्यक्ष ॥२६॥

६८ धर्म पचीसी।

दोहा—भव्य कमल रवि सिद्ध जिन, धर्म धुरन्धर धीर।
नमत सुरेन्द्र जग तम हरण; नमो त्रिविध गुरवीर ॥

चौपाई—मिथ्या विषयनमें रति जीव। ताते जगमें भ्रमे

सदीव ॥ विविध प्रकार गहैं परयाय । श्रीजिनधर्म न नेक सुहाय ॥२॥ धर्म बिना बहुगतिमें परे । चौरासीलख फिर फिर धरे ॥ दुख दावानल माहिं तपन्त । कर्म करे फल भोग लहन्त ॥३॥ अति दुर्लभ मानुष पर्य्याय । उत्तम कुल धन रोग न काय ॥ इस अवसरमें धर्म न करे । फिर यह अवसर कबहुं न सरे ॥ ४ ॥ नरकी देह पाय रे जीव । धर्म बिना पशु जान सदीव ॥ अर्थ काममें धर्म प्रधान । ता बिन अर्थ न काम न मान ॥ ५ ॥ प्रथम धर्म जो करै पुनीत । शुभसङ्गत आवै कर प्रीति ॥ विघ्न हरे सब कारज करे । धन सों चारों कूने भरे ॥६॥ जन्म जरा मृत्यु बश होय । तिहूंकाल डोले जग सोय ॥ श्रीजिन धर्म रसायन पान । कबहुं न रुचे उपजे अ-ज्ञान ॥७॥ ज्यों कोई मूरख नर होय । हलाहल गहे अमृत खोय ॥ त्यों शठ धर्म पदारथ त्याग । विषयन सों ठाने अनुराग ॥ ८ ॥ मिथ्याग्रह गहिया जो जीव । छांड़ धर्म विषयन चित दीव ॥ ज्यों पशु कल्पवृक्षको तोड़ । बृक्ष धतूरेकी भू जोड़ ॥९॥ नर देही जानों परधान । विसर विषय कर धर्म सुजान ॥ त्रिभुवन इन्द्रतने सुख भोग । पूजनीक हो इन्द्रन जोग ॥ १० ॥ चन्द्र बिना निश गज बिन दन्त । जैसे तरुण नारि बिन कन्त ॥ धर्म बिना त्यों मानुष देह । तातें करिये धर्म सुनेह ॥ ११ ॥ हथ गय रथ पायक बहु लोग । सुभट बहुत दल चार मनोग । ध्वजा आदि राजा बिन जान । धर्म बिना त्यों नरभव मान ॥ १२ ॥ जैसे गन्ध बिना है फूल । नीर विहीन सरोवर धूल ॥ ज्यों बिन धन शोभित नहीं भोन । धर्म बिना त्यों नर चिन्तोन ॥१३॥ अरचे सदा देव अरहन्त । चर्चे गुरु-पद करुणावन्त । खरचे दाम धरम सों प्रेम । रुचो विषय सुफल

नर पम ॥ १४ ॥ कमला चपल रहे थिर नाहिं। योवन रूप जरा लिपटाहिं ॥ सुत मित नारी नाव संयोग। यह संसार स्वप्नको भोग ॥ १५ ॥ यह लख चित धर शुद्ध स्वभाव। कीजै श्रीजिन धर्म उपाव ॥ यथा भाव तैसो गति गहै। जैसी गति तैसो सुख लहै ॥१६॥ जो मूर्ख है धर्म कर हीन। विषय ग्रन्थ रत्रिव्रत नहिं कीन। श्रीजिन भाषित धर्म न गहै। सो निगोदको मारग लहै ॥ १७ ॥ आलस मन्द बुद्धि है जास। कपटी विषय मग्न शठ तास ॥ कायरता मद परगुण ढकै। सो तिर्यञ्चयोनि लह सकै ॥ १८ ॥ आरत रुद्र ध्यान नित करे। क्रोध आदि मतसरता धरे ॥ हिंसक बैरभाव अनुसरे। सो पापिष्ट नरक गति परे ॥ १९ ॥ कपट हीन करुणा चित माहिं। है उपाधि ये भूले नाहिं ॥ भक्तिवन्त गुणवन्त जो कोय। सरलस्वभाव जो मानुष होय ॥ २० ॥ श्रीजिन वचन मग्न तप दान। जिन पूजे दे पात्रहि दान ॥ रहै निरन्तर विषय उदास। सोई लहै स्वर्ग आवास ॥ २१ ॥ मानुष योनि अन्तके पाय। सुन जिन वचन विषय विसराय ॥ गहै महाव्रत दुर्द्धर वोर। शुक्लध्यान धर लहैं शिव धोर ॥२२॥ धर्म करत सुख होत अपार। पाप करत दुख विविध प्रकार ॥ बाल गुपाल कहै सब नार। इष्ट होय सोई अवधार ॥२३॥ श्रीजिनधर्म मुक्ति दातार। हिंसा धर्म परत संसार ॥ यह उपदेश जान बड़ भाग। एक धर्म सो कर अनुराग ॥ २४ ॥ व्रत संयम जिम पद थुति सार। निर्मल सम्यक भाव निवार ॥ अन्त कषाय विषय कृषि करो। जो तुम भक्ति कामिनी वरो ॥ २५ ॥

दोहा—बुध कुमदनि शशि सुख करन, भो दुख नाशन जान।

कह्यो ब्रह्म जिन दास यह, ग्रन्थ धर्मकी खान ॥२६॥ द्यानत जे बांचें सुनें, मनमें करें उछाय। ते पावैं सुख शान्ति भी, मन वांछित फल दाय ॥ ॥ इति ॥

६६ अध्यात्म पञ्चासिका।

दोहा—आठ कर्मके बंधेमें, बन्धजीव भव वास। कर्म हरे सब गुण भरे, नमों सिद्धि सुखरास ॥१॥ जगत मांहिं चहुं गति विषैं, जन्म मरण वश जीव। मुक्ति माहिं तिहुंकालमें, चेतन अमर सदीव ॥ २ ॥ मोक्ष माहिं सेती कभी, जगमें आवे नाहिं। जगके जीव सदीव ही, कर्म काट शिव जाहिं ॥ ३ ॥ पूर्व कर्म उद्योगतै जीव करैं परिणाम। जैसे मदिरा पानतै, करै गहल नर काम ॥४॥ तातैं बाधैं कर्मको, आठ भेद दुखदाय। जैसे चिकने गातमें, धूलिपुञ्ज जम जाय ॥ ५ ॥ फिर तिन कर्मनके उदय, करै जीव बहु भाय। फिरके बांधे कर्मको, ये ससार सुभाय ॥ ६ ॥ शुभ भावन ते पुण्य है, अशुभ भाव तें पाप। दुहू आच्छादित जीवसो, जान सके नहीं आप ॥ ७ ॥ चेतन कर्म अनादिके, पावक काठ बखान। क्षीर नीर तिल तेल ज्यों, खान कनक पाखान ॥ ८ ॥ लाल बन्ध्यों गठड़ी विषै; भानु छिपो घन मांहिं। सिंह पीञ्जरे मैं दियो, जोर चले कछु नाहिं ॥६॥ नीर बुझावै आगको, जले टोकनी माहिं, देह माहि चेतन दुखी, निज सुख पावे नाहिं ॥१०॥ तदपि देहसों छुटत है, अन्तर तन है संग। सो न ध्यान अग्नी दहै; तब शिव होय अभंग ॥ ११ ॥ राग दोष तैं आप हीं, पड़े जगतके माहिं। ज्ञान भाव ते शिव लहै, दूजा संगी नाहिं ॥ १२ ॥ जैसे काहू पुरुषके द्रव्य

सिद्धसे गजपुर आये। पिता सुदर्शन माता मित्रा लख सुख पाये॥ शुभ कुरुवंश महान हेम तनु मच्छ चिन्हवर। तीस चांप तन तुंग त्रिजन मनमोहन सुन्दर॥ सहस्र चउरासी वर्षका आयु खंड आसन अटल। शिवथान शिखर सम्मेद जिन बन्दों तिनके पद कमल॥ १९॥ मल्लिनाथ तज विजय जन्म मिथिलापुर लीना। कुम्भ पिता रक्षिता माताको बहु सुख दीना॥ वंश कहो इक्ष्वाकु हेम तनु घट लक्षण वर। काय धनुष पच्चीस तुंग महैं लख सुर नर॥ आयु वर्ष पचपन सहस्र खड्गासन सोहै अचल। शिवथान शिखर सम्मेदवर तीर्थराज विसरे न पल॥ २०॥ मुनिसुव्रत अपराजितसे कुशाग्रपुर राजे। पितु सुमित्र पद्मावत माताको सुख साजे॥ हरिवंशी तनु श्याम कच्छ लक्षण शुभ सोहै। बीस धनुषका काय तुंग देखत मन मोहै॥ तीस सहस्र सु वर्षका आयु खंग आसन सुभग। सम्मेद शिखर शिवथान प्रभु तीर्थराज भवि मुक्ति मग॥ २२॥ प्राणत तज नमिनाथ जन्म मिथिलापुर लीना। विजय पिता वप्रामाताको अति सुख दीना॥ विमल वंश इक्ष्वाकु वर्ण तनु हेम सुहावन। पद्म पाखुरी अङ्क पञ्चदश चांप सुभग तन॥ आयु वर्ष दश सहस्रका पद्मासनसे शिव गये। सिद्धक्षेत्र सम्मेदगिरि वन्दित हों मंगल नये॥ २२॥ वैजयन्तसे नेमनाथ सूरीपुर प्रगटे। सिद्ध विजय शिवदेवीके देखत दुख विघटे॥ लहो श्रेष्ठ हरिवंश श्याम तनु शंख अङ्कवर। काय धनुष दश सहस्र वर्षका आयु पूर्णधर॥ खड्गासन गिरिनारिसे राजमती पति शिव गये। पशुबंदि छुड़ाई दयाकर तिन पदपंकज हम नये॥२३॥ प रस प्रभु आनत दिव तज काशीमें राजे। अश्वसेन वामा माता

गृह दुन्दुभि बाजे ॥ उग्र वंश तनु नील चिह्न अहिराज विराजे। नव कर काय उतंग आयु शत वर्ष सुछाजे ॥ खड्गासन सम्मेदगिर मुक्ति थान मद कमठ हर। मन वच तन् वन्दन करों ते वीसम जिनराज वर ॥२४॥ वर्धमान पुष्पोत्तरसे कुण्डलपुर आये। सिद्धार्थ पितु त्रिशला माता लख सुख पाये ॥ नाथ वंश तनु हेमवर्ण हरि चिन्ह मनोहर। सात हाथ तनु आयु बहत्तर अब्द लयोबर ॥ खड्गासन पावापुरी मुक्ति थान जगताप हर। नवे सु नाथूराम नित हाथ जोड़ युग शीश धर ॥ २५ ॥ इति ॥

७३ सूतक निर्णय

सूतकमें देव शास्त्र गुरुका पूजन प्रक्षालादि तथा मंदिरजीका वस्त्राभूषणादिक स्पर्शनकी मनाई है तथा पात्रदान भी वर्जित है। सूतक पूर्ण होनेके बाद प्रथम दिन पूजन प्रक्षाल तथा पात्रदान करके पवित्र होवे। सूतक विवरण इस प्रकार है। १, जन्मका दश दिन माना जाता है। २, स्त्रीका गर्भ जितने माहका पतन हुआ हो उतने दिनका सूतक मानना चाहिये, विशेषतः यह है कि यदि तीन माहसे कमका हो तो तीन दिनका सूतक मानना चाहिये। ३ प्रसूती स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है। इसके पश्चात् वह स्नान दर्शन करके पवित्र होवे ॥ कहीं २ चालीस दिनका भी माना जाता है। ४, प्रसूति स्थान एक माहतक अशुद्ध है। ५, रजस्वला स्त्री पांचवें दिन शुद्ध होती है। ६, व्यभिचारिणी स्त्रीके सदा ही सूतक रहता है, कभी भी शुद्ध नहीं होती। ७, मृत्युका सूतक १२ दिनका माना जाता है। तीन पीढ़ीतक १२ दिन, चौथी पीढ़ीमें ६

दिनका, छठी पीढ़ीमें ४ दिन, सातवीं पीढ़ीमें ३ दिन, आठवीं पीढ़ीमें एक दिन रात, नवमीं पीढ़ीमें स्नान मात्रसे शुद्धता कही है। ८, जन्म तथा मृत्युका सूतक गोत्रके मनुष्यको ५ दिनका होता है। ६, आठ वर्षतककी बालकके मृत्युका ३ दिनका और तीन दिनके बालकका सूतक १ दिनका जानो। १०, अपने कुलका कोई गृहत्यागी उसका संन्यासमरण अथवा किसी कुटुम्बीका संग्राममें मरण हो जाय, तो १ दिनका सूतक होता है। यदि अपने कुलका देशांतरमें मरण करे और १२ दिन पूरे होनेके पहले मालूम हो तो शेष दिनोंका सूतक मानना चाहिये। यदि दिन पूरे हो गये होवें तो स्नानमात्र सूतक जानो। ११, घोड़ी, भैंस, गौ आदि पशु तथा दासी अपने गृहमें जने तो १ दिनका सूतक होता है। गृह बाहर जने तो सूतक नहीं होता। १२, दासी, दास तथा पुत्रीके प्रसूत होय या मरे, तो ३ दिनका सूतक होता है। यदि गृह बाहर हो तो सूतक नहीं। यहांपर मृत्युकी मुख्यतासे ३ दिनका कहा है। प्रसूतका १ ही दिन जानो। १३, अपनेको अग्निमें जलाकर (सती होकर) मरे तिसका छह माहका तथा और और हत्याओंका यथायोग्य पाप जानना। १४, जने पीछे भैंसका दूध १५ दिनतक, गायका दूध १० दिनतक और बकरीका दूध ८ दिनतक अशुद्ध है पश्चात् खाने योग्य है। प्रगट रहे कि कहीं देश-भेदसे सूतक विधानमें भी भेद होता है इसलिये देशपद्धति तथा शास्त्रपद्धतिका मिलानकर पालन करना चाहिये।

(श्रावकधर्मसंग्रहसे उद्धृत)

७४ जिनगुण मुक्तावली

दोहा—श्रीजिनेश यतीशको, सुमिर हिये उपकार।
जिनवर गुण मुक्तावली, लिखूं स्वपर सुखकार ॥१॥

चौपाई।

तीर्थंकर पदके गुण घणे। घन धारावत जाहि न गिणें ॥ यथाशक्ति कहिये चित्तौन। जाते होय पाप विष बौन ॥ २ ॥ सतयुगमें प्रगटे परवीन। मानुष देह दोषकर हीन ॥ आर्य्यखण्ड आय अवतरे। युगल सृष्टिमें जन्म न धरे ॥ ३ ॥ क्षत्री वंश बिना नहिं और। जाके गर्भ जन्मकी ठौर ॥ माताके रज दोष न होय। एक पूत जन्मै शुभ सोय ॥ ४ ॥ मात पिताके देह मझार। मल अरु मूत्र नहीं निर्धार ॥ गर्भ शोध देवी आदरै। स्वर्ग सुगन्धि लाय शुचि करै ॥५॥ जाके औदारिक तन माहिं। सात कुधातु मल ते नाहिं। यातै परमोदारिक कहो। आदि पुराण देख सर दहो ॥ ६ ॥ केवल ज्ञान समय तन सोय। सहज निगोद बिना तब होय ॥ नारि नपुंसकके सम्बन्ध तीर्थंकर पद उदय न बन्ध ॥७॥ जाके संयम समय सही। आलोचन विधि वरणी नहीं ॥ मस्तक भाग विराजें केश। श्याम सचिक्कन सुभग सुवेश ॥८॥ अधिक हीन जिस अंग न होय। आधिव्याधि व्यापै नहिं कोय ॥ विष शस्त्रादिक कारण पाय। आयु कर्म स्थित छेद न ताय ॥६॥

दोहा—इत्यादिक महिमा घणो, तीर्थङ्कर परमेश।
दश बिधि जाके जन्म तें, अतिशय और विशेष ॥१०॥

चौपाई।

प्रभुके अङ्ग न होय पसेव। नहीं निहार क्रिया स्वयमेव ॥

नाशा नेत्र कर्ण मल नहीं। जीभ दन्त मल मूत्र न कहीं ॥ ११ ॥ क्षीर बराबर रुधिर अनूप । शंख वर्ण शुचि मान सरूप ॥ समच-तुरस्र सुभग संठान । तुंग देह दश ताल प्रमान ॥१२॥

दोहा—अपने कर अंगुष्ठ सो, मध्यमिका परयंत ।
बारह अंगुल ताल यह, अब धारो मतिवन्त ॥१३॥
याहो अपने ताल सों, दशगुण ऊंच शरीर ।
सम चतुरस्र संठानको, यह प्रमाण है वीर ॥१४॥

चौपाई—प्रथम सार संहनन अविद्ध । वज्रवृषभ नाराच प्रसिद्ध । रूप सम्पदा अचरजकार । सुर नर नाग नयन मनहार ॥१५॥ सहस अठोतर लक्षण लसैं । वक्रोके तन चौसठ बसैं ॥ लक्षण पाय सुल-क्षण भिन्न । सो प्रतिमाके आसन चिह्न ॥ १६ ॥ सहज सुगन्धि बसै वपुमाहिं । सब सुगन्धि जासो द्रवजाहिं ॥ लोक उठावन शक्ति निवास । अतुल अनन्त देह बल जास ॥ १७ ॥ प्रिय हित वचन अमृत उनहार । सब जगजन्तु श्रवण सुखकार ॥ जन्म जात अतिशय दश येह । अब दश केवलके सुन लेह ॥ १८ ॥ दोसौ यो-जन परिमित लोय । चहुंदिषमें दुर्भिक्ष न होय ॥ व्योम विहार भू-मिवत जास । वपुसों होय न प्राण निवास ॥ १९ ॥ सब उपसर्ग रहित जग सूप । निराहार अति तृप्त स्वरूप ॥ एक दिशा सन्मुख मुख जोय । चतुरानन देखे सम कोय ॥ २० ॥ सब विद्या हैं अति गंभीर । छाया वरजित विमल शरीर ॥ पलक पात लोचन नहिं गहैं । नख अरु केश एकसे रहैं ॥ २१ ॥

सोरठा—नई रसादिक धात, होय न अशन अभावतैं ।
तिस कारण तें भ्रात, नख अरु केश बढ़े नहीं ॥२२॥

इलम। विवेक जाता रहा हियेसे सबकी जूंटी पियें चिलम ॥टेक॥ प्रथम तमाखू महा अशुचि है, म्लेच्छ इसको बनाते हैं। छूने योग्य नहीं बिलकुलके अपना तोय लगाते हैं। डंडी चिलममें धूम योगतें जोव असंख्य बताते हैं। पीते ही मर जांय सभी यह यह जिन श्रुतिमें गाते हैं॥ होती इसमें अपार हिंसा जरा दया नहीं आती गिलम। विवेक जाता०॥ कौमरिजालोंके साथ पीते गई आबरू ये क्या बनी है। हया दूर कर धर्म लजाते उन्हींमें जा उनकी मत सनी है॥ व चर्स गांजा पियें पिलावें उन्होंने बुद्धि तेरी ये हनी है। स्वास प्रगट कर बदन जलाता प्राण हरणको ये हरफनी है॥ लगाना दमका बहुत बुरा है पीते तनमें पड़े खिलम। विवेक०॥ थावर त्रसकर सहित भरा जल कुवास है ए निधान हुक्का। सुतोय परसे सुजीव मरते है पापका ए निधान हुक्का॥ रोग भिन्न हो जाय कहें मर पीते हैं हम यह जान हुक्का। शुद्ध औषधि करो ग्रहण तुम अशुचि दूर करिये जान हुक्का। सीख सुगुरुकी यही रूपचन्द त्यागो जल्द मत करो विलम। विवेक०॥

७८ नेमि ब्याह।

(विनोदीलाल कृत सवैया।)

मौर धरो शिर दूलहके कर कंकण बांध दई कस डोरी। कुंडल काननमें झलकें अति भालमें लाल विराजत रोरी॥ मोतीनकी लड़ शोभित है छवि देखि लजें वनिता सब गोरी। लाल विनोदीके साहिबको मुख देखनको दुनियां उठ दौरी॥ १॥ छत्र फिरे शिर दूलहके तब वारत रत्न शिवादेवी मैया। कृष्ण इते बल-

भद्र उते कर ढोरत चमर चले दोऊ भैया ॥ भूप* समुद्र विजय सब संग चले वसुदेव उछाह करैया। लाल विनोदके साहिबकी वनिता सब ही मिलि लेत बलैया ॥ २ ॥ गोंडे गये जब नेम प्रभू पशु पक्षिन खेंच पुकार करी है। नाथसे नाथनके प्रतिपाल दयाल सुनो विनती हमरी है ॥ बन्दि पड़े बिललायं सबे बिन कारण विपदा आनि परी है। पूछत लाल विनोदीके साहिब सारथी क्यां इन बन्दि भरी है ॥ ३ ॥ सारथीने कर जोड़ कहो सुन नाथ इन्हें जु बिदारेंगे अब। यादव संग जुरे सबरे तिन कारण ये सब मारेंगे अब ॥ इनके बच्चा बनमें बिलपें इनको वे आज संघारेंगे अब। ताते तुमसे फर्याद करें हमरो गति नाथ सुधारेंगे अब ॥ ४ ॥ बात सुनी उतरे रथसे पशु पक्षिनकी सब बन्दि छुड़ाई। जावो सबै अपने थलको हमरो अपराध क्षमा करो भाई॥ धृक् है ऐसो जोनो जगमें तबही प्रभु द्वादश भावना भाई। देव लोकान्तिक आय गये जिन धन्य कहैं सब यादव राई ॥ ५ ॥ प्रभु तो बिन ऐसी कौन करै औ को जगमें यह बात विचारे। कौन तजे सुत बन्धु वधू अरु को जगमें ममता निर्वारे ॥ को वसु कर्मनि जीत सके अरु आप तरै अरु औरन तारे। लाल विनोदके साहबने यश जीत लयो जग जीतन हारे ॥ ६ ॥ नेम उदास भये जबसे कर जोड़के सिद्धका नाम लयो है। अम्बर भूषण डार दिये शिर मौर उतारके डार दयो है। रूप धरों मुनिका जब ही तब ही चढ़िके गिरिनारि गयो है। लाल विनोदीके साहिबने तहां पंच महाव्रत योग लयो हैं ॥ ७ ॥ नेमकुमारने योग लयो जब होनेको सिद्ध करी मन इक्षा। या भवके सुख जान अनित्य सो आदर

एक उद्दण्डकी भिक्षा ॥ स्नेह तजो घरबार तजो नहीं भोग विलासनको मन शिक्षा। लाल विनोदीके साहिबके संग भूप सहस्र लई तब दिक्षा ॥ ८ ॥ काहूने जाय कही सुनो राजुल तेरो पिया गिरिनारि चढ़ो है। इतनी सुन भूमि पछार लई मानो तन सेती जीव कढ़ो है ॥ सो उग्रसेनसे जाय कही सुन तात विधाता अनर्थ गढ़ो है। लाज सबै सुध भूल गई पिय देखनको जु उछाह बढ़ो है ॥ ९ ॥ लाड़ली क्यों गिरनारि चढ़े उस ही पति तुल्य सुधी वर लाऊं। प्रोहितको पठावाऊं अभी बहु भूपरके सब देश ढुंढ़ाऊं ॥ व्याह रचों फिरिके तुम्हरो महि मण्डलके सब भूप बुलाऊं। लाल विनोदीके नाथ बिना द्युतिवंतको कंत तुझे परणाऊं ॥ १० ॥ काहे न बात सम्हाल कहो तुम जानत हो यह बात भली है। गालियां काढ़त हो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है। मैं सबको तुम तुल्य गिनों तुम जानत ना यह बात रली है। या भवमें पति नेमि प्रभू वह लाल विनोदीको नाथ बली है ॥ ११ ॥ मेरा पिया गिरनारि चढ़ो सुन तात मैं भी गिरिनारि चढ़ोंगी। संग रहों पियके वनमें तिन ही पियको मुख नाम पढ़ोंगी ॥ और न बात सुहाय कछू पियकी गुणमाल हियेमें पढ़ोंगी। कंत हमारे रचें शिवसे शिव थानको मैं भी सिवान चढोंगी ॥ १२ ॥ इति ॥

७६ लावनी।

धन्य दिवस धनि घड़ी आजकी जिन छवि नजर पड़ी। स्वपर भेद बुधि प्रगट भई उर भर्म बुद्धि बिसरी ॥ टेक—नासिकाग्र है दृष्टि मनोहर वर विराग सुथरी। आतम शुद्ध सुराजत मानो अनु-

भव सुरस भरी ॥ १ ॥ शांत्याकृति निरखत ही परकी आरति सर्व गरी । चिर मिथ्या तम नाश करनको मानो अमृत झरी ॥ २ ॥ वीतराग ताका सुहेतु सुनि मोह भुजग विसरी । पट भूषण विनवै सुन्दरता नाहीं रंक हरी ॥३॥ जाकी द्युति शत कोट चन्द्रने अद्भुत जग विस्तरी । तारक रूप निहारि देव छवि मा॰िक नमन करी ॥४॥

८० वेश्या कुटलाई

मन करो प्रीति वेश्या विष बुझी कटारी । है यही सकल रोगनकी खान हत्यारी ॥ टेक ॥ औषधि अनेक हैं सर्प डसेकी भाई । पर इसके काटे की नहिं कोई दवाई ॥ गर लगे बान तो जीवित हू रहि जाई । पर इसके नैनके बानसे होय सफाई ॥ है रोम रोम विष भरी करो ना यारी । है यही सकल रोगनकी खान हत्यारी ॥ १ ॥ यह तन मन धन हर लेय मधुर बोलीमें । बहुतोंका करै शिकार उमर भोलीमें ॥ कर दिये हजारों लोटपोट होलीमें । लाखोंका दिल कर लिया कैद चोलीमें ॥ गई इसी कर्ममें लाखों ही जमीदारी । है यही सकल रोगनकी खान हत्यारी ॥ २ ॥ हो गये हजारोंके बल वीर्य छारा । लाखोंका इसने वंश नाश कर डारा ॥ गठिया प्रमेह आतिशने देश बिगारा । भारत गारत हो गया इसीका मारा ॥ कर दिये हजारों इसने चोर और ज्वारी । है यही सकल दुर्गुणकी खानि हत्यारी ॥ ३ ॥ इसही ठगनीने मद्य मांस सिखलाया । सब धर्म कर्मको इसने धूर मिलाया ॥ और दया क्षमा लज्जाको मार भगाया । ईश्वर भक्तीका मूल नाश करवाया । हों इसके उपासक रौरवके अधिकारी । है यही० ॥ ४ ॥ वह नव-

प्रभजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं । अति उत्तमफल सु मंगाय, तुम गुन गावतु हों । पूजों तनमन हरषाय, विघन नशावतु हों । श्री० ॐ ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं । सजि आठो दरब पुनीत, आठों अङ्ग नमों । पूजों अष्टमजिन मीत, अष्टम अवनि गमों श्री० । ॐ ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेंद्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं ॥

पञ्चकल्याणक ।

छन्द तोटक—कलि पञ्चमचैत सुहात अलो । गरभागम मङ्गल मोद भलो । हरि हर्षित पूजन मातु पिता । हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपञ्चम्यां गर्भमङ्गलप्राप्ताय अर्घं । कलि पौष इकादशि जन्म लयो । सब लोक विषै सुखथोक भयो सुर ईश जजे गिरशीश तबैं । हम पूजन हैं नुत शीश अबै ॥२॥ ॐ ह्रीं पौष कृष्णैकादश्यां जन्ममङ्गलप्राप्ताय अर्घं । तप दुद्धर श्रीधर आप धरा । कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा ॥ निज ध्यानविषैं लवलीन भये । धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥ ३ ॥ ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय अर्घं । वर केवलभानु उद्योत कियो । तिहुं लोक तणों भ्रम मेट दियो ॥ कलिफाल्गुण सप्तमि इंद्र जजे ॥ हम पूजहिं सर्व कलङ्क भजे ॥ ४ ॥ ॐ ह्रीं फाल्गुणकृष्ण सप्तम्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय अर्घं । सित फाल्गुण सप्तमी मुक्ति गये ॥ गुणवन्त अनन्त अवाध भये ॥ हरि आय जजे तित मोद-धरे ॥ हम पूजत ही सब पाप हरे ॥५॥ ॐ ह्रीं फाल्गुणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय अर्घं ।

जयमाला ।

दोहा—हे मृगांकअंकितचरण, तुम गुण अगम अपार ।

गणधरसे नहिं पार लहिं तो को वरनत सार ॥१॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरै अति उमगाय।
तातैं गाऊं सुगुण तुम तुमही होउ सहाय ॥२॥

छन्द पद्धरि (१६ मात्रा)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान। भवकानन हानन दवप्रमान ॥ जय गरभजनम मङ्गल दिनंद। भवि जीवविकाशन शर्मकंद ॥ ३ ॥ दशलक्षपूर्वकी आयु पाय। मनवांछित सुख भोगे जिनाय ॥ लखि कारण ह्वै जगतैं उदास। चिन्त्यों अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥ ४ ॥ तित लौकांतिक बोध्यो नियोग। हरि शिविका सजि धरियो अभोग ॥ तापै तुम चढ़ि जिनचन्दराय। ताछिनकी शोभाको कहाय ॥ ५ ॥ जिन अङ्ग सेत सित चमर ढार। सित छत्र शीस गलगुलकहार ॥ सित रतनजड़ित भूषण विचित्र। सित चन्द्रचरण चरचौं पवित्र ॥ ६ ॥ सित तन द्युति नाकाधीश आप। सित शिविका कांधे धरि सुचाप ॥ सित सुजस सुरेश नरेश सर्व। सित चितमें चिन्तत जात पर्व ॥ ७ ॥ सित चन्दनगरतें निकसि नाथ। सित वनमें पहुंचों सकलसाथ ॥ सितशिलाशिरोमणि स्वच्छछांह। सित तप तित धार्यो तुम जिनाह ॥ सित पयको पारण परमसार। सित चन्द्रदत्त दीनों उदार ॥ सित करमें सो पयधार देत। मानों बांधत भवसिंधुसेत ॥९॥ मानों सुपुण्यधारा प्रतच्छ। तित अचरज पन सुर किय ततच्छ ॥ फिर जाय गहन सित तपकरंत। सित केवल ज्योति जग्यो अनन्त ॥ लहि समवसरण रचना महान। जाके देखत सब पापहान ॥ जहं तरु अशोक शोभै उतंग। सब शोकतनो चूरै प्रसंग ॥११॥ सुर सुमनवृष्टि नभतैं सुहात। मनु मन्मथ तज

हथियार जात ॥ बानी जिन मुखसों खिरत सार । मनुतत्वप्रकाशन मुकुर धार ॥१२॥ जहं चोसठ चमर अमर दुरन्त । मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत । सिंहासन है जहं कमल जुवत मनु शिवसरवरको कमलशुक ॥१३॥ दुंदुंभि जितबाजत मधुर सार । मनु करमजीतको है नगार ॥ शिर छत्र फिरै त्रय श्वेत वर्ण मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण ॥१४॥ तनप्रभातनो मण्डल सुहात । भवि देखत निजभव सात सात ॥ मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय । भविजन भव मुख देखत सुआय ॥१५॥ इत्यादि विभूति अनेक जान । बाहिज दीसत महिमा महान ॥ ताकों वरणत नहिं लहत पार । तो अंतरङ्गको कहै सार ॥१६॥ अनअंत गुणनिजुत करि विहार । धरमोंपदेश दे भव्य तार ॥ फिर जोगनिरोध अघाति हान । सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥१७॥ वृन्दावन वन्दत शीश नाय । तुम जानत हो मम उर जु भाय ॥ तातैंका कहौं सु बार बार । मनवांछित कारज सार सार ॥१८॥

छन्द घत्तानन्द ।

जय चन्द्रजिनन्दा आनंदकंदा, भवभयभञ्जन राजै हैं ॥ रागादिकद्वंदा हरि सब फंदा, मुकतिमांहि थिति साजे हैं ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

छंद चौबोला—आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचन्द जजैं ॥ ताके भवभवके अघ भाजैं, मुक्तसार सुख ताहि सजैं ॥२०॥ जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर जजैं । वृन्दावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं ॥ २१ ॥

[इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

८४ शांतिनाथ जिनपूजा ।

या भवकाननमें चतुरानन, पापपनानन घेरि हमेरी। आतम-जान न मान न ठान न, बान न होन दई सठ मेरो ॥ तामद भानन आपहि हो, यह छान न आन न आननटेरी। आन गही शरनागतको अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् ॥

हिमगिरिगतगंगा-धार अभंगा, प्रासुक संगा भरि भृंगा। जरमरनमृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा ॥ श्रीशांति-जिनेशंनुत शक्रेशं वृष चक्रेशं चक्रेशं चक्रेशं। हनि अरि चक्रेशं हे गुनधेशं: दयामृतेशं मक्रेशं ॥ १ ॥ वर बावनचंदन, कदलीनंदन, घन आनंदन सहित घसों। भवताप निकन्दन, ऐरा नन्दन, वंदि अमंदन, चरनवसों ॥ श्री० ॥ २ ॥ ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं ॥ हिमकरकरि लज्जत, मलयसुसज्जत, अच्छतजज्जत, भरिथारी। दुखदारिद गज्जत, सदपदसज्जत, भवभय भज्जन, अतिभारी ॥ श्री० ॥ ३ ॥ ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं ॥ मंदार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीरधरं ॥ श्री० ॥ ४ ॥ ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥ पकवान नवीने, पावन कीने, षटरसभीने, सुखदाई। मनमोदनहारे, छुधा विदारे, आगे धारे गुनगाई ॥ श्री० ॥ ५ ॥ ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं ॥ तुम ज्ञानप्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेयविकाशे

बुद्धि, वीर जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह चित्त उसीमें लीन रहो ॥१॥
विषयोंकी आशा नहीं जिनके, साम्य-भाव धन रखतेहैं,
निज-परके हित साधनमें जो निशदिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुखसमूहको हरते हैं ॥ २ ॥
रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नहीं सताऊं किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूं,
परधन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ॥ ३ ॥
अहंकारका भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरोंकी बढ़तीको कभी न ईर्षा भाव धरूं ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूं,
बने जहांतक इस जीवनमें औरोंका उपकार करूं ॥ ४ ॥
मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणास्रोत बहे ।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणत हो जावे ॥५॥
गुणीजनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहांतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषोंपर जावे ॥६॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आजावे।
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,
तो भी न्याय मार्गसे मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥७॥
होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवीसे नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन, दृढ़तर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्टयोगमें सहनशीलता दिखलावे ॥८॥
सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावे,
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे।
घरघर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्मफल सब पावें ॥९॥
ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजाका किया करे।
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांतिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें, फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जगमें मोह दूरपर रहा करे,
अप्रिय कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तुरूप विचार खुशीसे सब दुख-संकट सहा करें ॥११॥

श्रीपावापुरजी

श्रीगिरनारजी

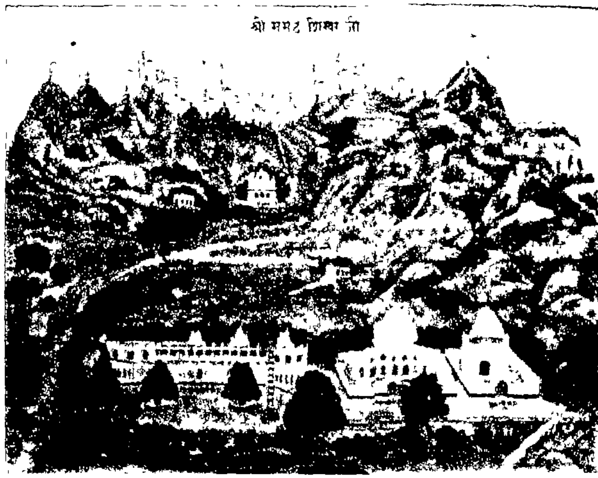

श्रीसम्मेद शिखरजी सिद्धक्षेत्र।

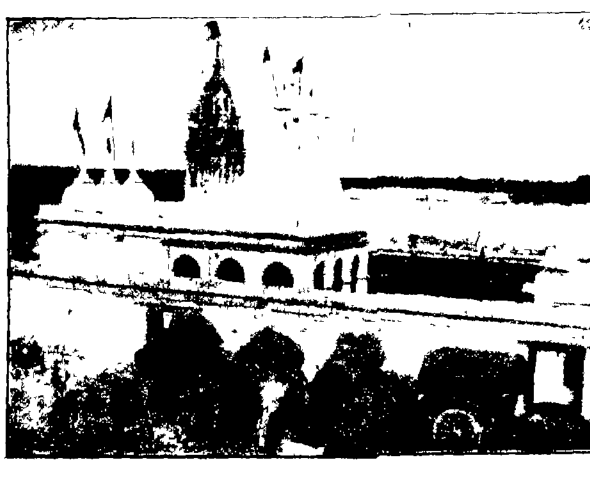

श्रीभातकुलीजी अतिशय क्षेत्र।

काशीनिवासी कविवर बृन्दावनविरचित

८८ अरहंतपासाकेवली।

दोहा—श्रीमत वीरजिनेशपद, बंदों शीस नवाय। गुरु गौतमके चरन नमि, नमों शारदा माय ॥ १ ॥ श्रेणिक नृपके पुण्यतें, भाषी गणधरदेव। जगतहेत अरहंत यह, नाम 'केवली' सेव ॥ २ ॥ चंदनके पासाविषै, चारों ओर सुजान। एक एक अक्षर लिखौ, श्री 'अरहंत' विधान ॥ ३ ॥ तीन वार डारो तबै, करि वर मंत्र उचार। जो अक्षर पांसा कहै, ताकौ करौ विचार ॥ ४ ॥ तीन मंत्र हैं तासुके, सात सात हो बार। थिर ह्वै पांसा डारियो, करिकै शुद्ध उच्चार ॥ ५ ॥ जानि शुभाशुभ तासुतें, फल निज उदय-नियोग। मन प्रसन्न ह्वै सुमरियो, प्रभुपद सेवहु जोग ॥ ६ ॥

प्रथममंत्र—ओं ह्रीं श्रीं बाहुबलि लंबबाहु ओं क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षै क्षों क्षः ऊर्द्ध भुजा कुरु कुरु शुभाशुभं कथय कथय भूतभविष्यति-वर्तमानं दर्शय दर्शय सत्यं ब्रूहि सत्यं ब्रूहि स्वाहा।

(प्रथम मंत्र सात वार जपना)

दूसरा मंत्र—ओं ह: ओं सः ओं क्षः सत्यं वद सत्यं वद स्वाहा।

(सात वार जपना *)

तीसरा मंत्र ओं ह्रीं श्रीं विश्वमालिनि विश्वप्रकाशिनि अमोघ-वादिनि सत्यं ब्रूहि सत्यं ब्रूहि राह्यहि राह्यहि विश्वमालिनि स्वाहा।

---

* मन एकत्र करि विनयसहित अपना अभिप्राय विचारकरि श्रीअहंत भगवान के नामाक्षरका पांसा तीन बेर डालना। जो जो वरन पड़ैं तिसो वरनका भेद पाके फलका निश्चय करना। जिन मार्गमें यह बड़ा निमित्त है। इसे हमने लिखा है कि अपना वा पराया उपकार होय। (वृन्दावन)

(यह मंत्र भी सात बार जपना)

अथ अकरादि प्रथम प्रकरण ।

अअअ । जो परे तीन अकार । तो जानि सुखविस्तार । कल्याणमंगल होय । सम्मान बाढ़ै सोय ॥ १ ॥ लक्ष्मी वसै नित धाम । व्यापारमें बहु दाम । परदेशमें धनलाभ । संग्राममें जय-लाभ ॥ २ ॥ नृपद्वारमें सम्मान । संकष्ट कटै प्रमान । सब रोग अरु दुर्भागि । ततकाल जावै भागि ॥ ३ ॥ प्रगटै सकल कल्यान यामें न संशय जान । यह महा उत्तम अंक । फल अटल जासु निसंक ॥ ४ ॥

चौपाई छंद ।

अअर । दोअकारपर परै रकार । मध्यम फल है सुनो विचार । जो कारज चिंतो मनमाहिं । सो तौ शीघ्र होनको नाहिं॥५॥ पूरब पाप उदय है जानि । सोई करत काजकी हानि । तातें इष्टदेव आराधि । कुलदेवीको पूजि सुसाधि ॥ ६ ॥ तासु जजन आराधन किये । किंचित् होय काज सुनि हिये । मध्यम प्रश्न पर्यौ है येह । मति मानो यामें संदेह ॥ ७ ॥

पद्धड़ी छंद ।

अअहं । जहँ दो अकारके अंत माहिं । हंकार परै सो शुभ कहाहिं । धन धान्य समागम लाभ होय । परदेश गयो जो वहै सोय ॥८॥ नो मनवांछितकी सिद्धि जान । अरु मित्र बंधुसों प्रीति मान । तत्काल शत्रुको होय नास । सब विघ्न मिटैं अनयास तास ॥ ९ ॥ घरमें प्रगटै मंगलविभूति । तब पुण्यप्रभाव प्रबल अकूत । यह उत्तम प्रश्न सुनो पुमान । यों कहत केवली गुननिधान ॥ १०॥

अअत । जहं दुइ अकार पर है तकार। तहं शुभ फल जानो हे उदार। बहु मित्र मिलें भू वस्त्र ताहि। अरु पुत्र पौत्र है सदनमाहिं ॥११॥ रोगीको रोग विनाश होय क्रूरग्रहको निग्रह भि होय। जो मित्र बंधु परदेश होय, घर आवै अति मन मुदित सोय ॥ १२ ॥ कुलवृद्धि तथा सज्जन महान। तिनसों नित प्रीति बढ़ै सयान। दिन दिन अति लाभ मिलै पुनीत। यह प्रश्न केवली कहत प्रीति ॥ १३ ॥

अरअ । दुइ अकारके मध्य रकार। पांसा परै तासु सुविचार। उत्तम फलकारी यह होत। नित नव मंगल होत उदोत ॥१४॥ पूरब जो धन गयो नसाय। सो सब तोहि मिलैगो आय। राजा करहिं बहुत सनमान। बसन भूमि हय देवहिं दान ॥१५॥ भ्राता मित्र समागम होहि। सब विधि सदनमहोच्छव तोहि। सकल पापको होय विनाश। धर्मवृद्धि नित करै प्रकाश ॥ १६ ॥

अरर । जो अरर प्रगटै वरन। तो सकल मंगल करन। धन लाभ सूचत येह। दशदिश विमल जस तेह॥१७॥जहं जाय वह मतिवंत। तहं लहै पूजा संत। है इष्टबंधुमिलाप। उद्यमविषै श्री आप ॥ १८ ॥ जल चोर पावक मरी। ये सकहिं नहिं कछु करी। सब शत्रु कीजे हान। प्रगटै सकल कल्यान ॥ १९ ॥ जिनधरमके परभाव। यह जान है सद्भाव। उत्तम कहत फल अंक। उत्तम गहो निःशंक ॥ २० ॥

अरहं । अरहं परै जो वरन। सौभाग्यसंपतिकरन। तो जो मनोरथ होइ। अनयास पूजै सोय ॥२१॥ कछु क्लेश है क्रममाहिं

तसु रंच ही भय नाहिं। निज इष्ट पूजहु जाय। सब विघन जांय नसाय ॥ २२ ॥ मन सोच तजि थिर होहि। आनन्द मङ्गल तोहि। सब सिद्धि ह्वै है काज। अरहं कहत महाराज ॥ २३ ॥

अरत । जब अरत पांसा ढरै। तब सकल सुख विस्तरै। तोहि तिया प्रापति होय। सुत होय पौत्रपि होय ॥२४॥ कुलगोत सब सोभंत। तब भाल तिलक लसंत। जहँ जाहुगे तुम मीत। तहँ लहहु पूजा नीत ॥२५॥ जनमध्य हो तुम केम। ताराविषैं शशि जेम। यह रुचिर प्रश्न सुजान। मनमें धरो प्रभुध्यान ॥२६॥

अहंअ । जो अहंअ छबि देय। तो सुनहु पूछक भेय। पहिले कछुक दुख होइ। फिर नाश ह्वै है सोय॥२७॥धनलाभ दिन दिन बढ़ै। अरु सुजनसंगम चढ़ै। जो काम चिंतहु वृद्ध। सो सकल ह्वै है सिद्ध ॥ २८ ॥

अहंर । जब अहंर सु दरसाय। तब अरथलाभ कराय। जसलाभ पृथिवीलाभ। यह देख परत सुलाभ (?) ॥२९॥ राजादि वंधूवर्ग। सब करहिं आदर सर्ग। भ्रातादि इष्टमिलाप। धन-धान्य आगम व्याप ॥३०॥ व्यवहार अरु परदेस। सब ओर उत्तम तेस। सब सोच संशय हरहु। शुभ तुमहिं धीरज धरहु ॥३१॥

अहंहं ।जो अहंहं है अंक। सो कहत है फल बंक। दीखै न कारज सिद्ध। यह काज तोर सुबुद्ध॥३२॥धन नाश ह्वै है तोहि। तन क्लेस पीड़ा होहि। व्यापारमें धनहान। परदेश सिद्धि न जान ॥३३॥ तिहिहेत कर भविजीव। जिन जजन भजन सदीव। जप दान होम समाज। तब होइ कछु इक काज ॥३४॥

अहंत । अक्षर अहंत परै । तब सकल शुभ विस्तरै । कल्याणमंगल धाम । सुन भ्रात मिलहि सुदाम॥३५॥ उद्यमविषै धनधान्य । संपतिसमागम मान्य । रनकेविषैं सब जीत । तोहि लाभ निश्चय मीत ॥ ३६ ॥ अरु होय बंदीमोच्छ । निरबाध है यह पच्छ । तुव ह्वै मनोरथ सिद्ध । मति मान संशय वृद्ध ॥ ३७ ॥

अतअ । यह अतअ भाषत वरन । कल्याणमंगलकरन । उद्यममें श्रीविस्तरन । सब विघ्नग्रहभयहरन ॥ ३८ ॥ सुतपौत्रलाभ निहार । वांछित मिलै मनिहार । दिन आठयें कछु तोहि । कछु श्रेष्ठ भावो होइ ॥ ३९ ॥

अतर । जो अतर अक्षर ढरै । तो सकल मंगल करै । वाजित्र सदन सुनाय । घरमाहिं अनंद बधाय ॥ ४० ॥ प्रियबंधुचिंता होहि । तसु मोद मंगल होहि । धनधान्यसंजुत होय । घर शीघ्र आवे सोय ॥ ४१ ॥ गजवाजि रथआरूढ़ । भूषन वसनजुत प्रूढ़ । संजुन अमित कल्यान । निरभै मिलै भयभान ॥४२॥

अहंत । अतह ढरै जो अंक । सो अशुभ कहत निशंक । नहिं लाभ दीखत भाय । धन हाथहूको जाय ॥ ४३ ॥ ह्वै इष्टबंधुवियोग । तियननयसंपतियोग । राजादि चोररु मरो । ह्वैं शत्रु सबही घरो ॥ ४४ ॥ तिहि विघननाशन हेत । कर देवजजन सुचेत । तिहि पुण्यके परभाव । घर होइ मंगलचाव ॥४५॥

अतत । जइं अतत आवै वरन । धनलाभ तहं बुधि वरन । संपदा सुखविस्तरन । सब सिद्धि वांछित करन ॥ ४६ ॥ प्रिय इष्ट बंधू मिलन । सब लाभ दिन प्रति दिनन । उद्यम तथा रनथान

तुव ध्रुव विजय बुधिवान ॥ ४७ ॥ वादानुवादमंझार । तुव जीत होय उदार । यामें न संशय करहु । शुभ जानि धीरज धरहु ॥४८॥

अथ रकारादि द्वितीय प्रकरण ।

रअअ । आदिरकार अकार दुइ, जब ये प्रगटें वर्न । तब धनसंपतिलाभ बहु, सुजनसमागम कर्न ॥ ४९ ॥ सोना रूपा ताम्र बहु, वसनाभरन सुरत्न । प्राप्त होय निश्चय सकल, चिंतित वित्त जुतजत्न ॥ ५० ॥ अन्तरैन दीखै सुपन, माला सुमन सुजान । हय-गजरथ आरूढ़ अरु, देवागमन विमान ॥ ५१ ॥

रअर । आदि रकार अकार पुनि, तापर परै रकार । सुनि पूछक तैं तासु फल, है अभिमतदातार ॥ ५२ ॥ देश प्रजाको लाभ है, खेती वर व्यापार । धन पावै परदेशमें, घरमें सब सुखसार ॥५३॥ संगर संकट घोरमें, कुलदेवी सुखदाय । करै सहाय प्रसाद तसु, सब विधि सिद्धि लहाय ॥ ५४ ॥

रअहं । आदि रकार अकार पर, हं प्रगटै जब आय । भय-कारी धनहानि यह, क्लेश अशेष कराय ॥५५॥ यह कारज कर्तव्य नहिं, लाभ नाहिं या माहिं । बांधवमित्र वियोगता, अस यह सगुन कहाहिं ॥ ५६ ॥ जहं कहुं जाहु विदेश तहं सिद्ध न होवे काज । तातैं थिर ह्वै कछुक दिन, सुमिरहु श्रीजिनराज ॥ ५७ ॥

रअत । रअत परै पाँसा कहै, मग धन लूटहिं चोर । द्रव्यहानि होवहि बहुत, अशुभ फलहि चहुं ओर ॥ ५८ ॥ नाव बुझै पावक लगै, रोगरु कष्ट कुजोग । कियो काज विनशै सकल, अशुध करमके भोग ॥५९॥ तातैं शोक न कीजिये, भावीगति बल-वान । थिर ह्वै निशदिन सुमिरिये, कृपासिंधुभगवान ॥ ६० ॥

ररअ । ररअ अंक आवै जहां तब ऐसो फल जान। तव चित चंचल चपल अति, सुनि प्रेच्छक मतिमान ॥ ६१ ॥ तैं चाहत अर्थागमन,मूलनाश तसु होइ। राजदण्ड चौराग्निभय,तनदुख तोहि बहोइ ॥६२॥ तनय तिया बांधवनिसों ह्वै है तोहि वियोग। अबतैं निसरे वरसमहं, कटहिं सकलदुखभोग ॥ ६३ ॥

ररर। तिहुं रकारको फल सुनो, मनवांछित फलदाय। धरा धान्य धनलाभ तोहि,मिलहि वस्तु सब आय॥६४॥तिया तनय सुत वधू धन, इष्टबंधुसंजोग। कृत उत्तम कल्याण तोहि, मिलैं सकल संभोग ॥ ६५ ॥ महालाभ उद्यमविषैं, सदन तथा परदेश। सुफल काज तुव होय नित, यामैं भ्रम नहिं लेश ॥६६॥

ररहं। दुइ रकारपर हं परै, तब मनवांछित होय। शोभनीक सुखसंपदा,सहज मिलावै सोय॥६७॥मंगल दुंदुभि होइ धुनि, अरथलाभ बहु तोहि। मिलि है वसुधा देश पुर, यह प्रतिभासत मोहि ॥६८॥ जौन काज तुम चित धरउ, तुरित होइ है तौन भूपति अति आनन्द करै, तिन प्रति मंगलभौन ॥६९॥

ररत। ररत वरन यह कहत हैं, सुन पूछक चित लाय। परतियकी अभिलाषतैं; किये अनर्थ उपाय ॥ ७० ॥ अरथनाश तातैं भयो, अरु विग्रह घरमाहिं। राजदंड तैंने सहे, यामैं संशय नाहिं ॥ ७१ ॥ तातैं परतिय परिहरहु, शुभमारग पग देहु। ब्रह्मचरजजुत प्रभु भजो, नरभवको फल लेहु ॥ ७२ ॥

रहंअ। रहंअकार आवै जहां, तहं उत्तम फल जान। वनितापुत्रधनागमन, बंधुसमागम मान ॥७३॥ अरथलाभ जसलाभ

पुनि, धर्मलाभ ह्वै तोहि। रन विदेश व्यापारमें, विजय तुरंतहि होहि ॥ ७४ ॥

रहंर । रहंर आवै जवहिं तव, विषम काज जिय जान। उद्यम सुफल न होय कछु, घर बाहर हैरान ॥७५॥ शत्रु बहुत सुख कतहुं नहिं; तातैं तजि यह काज। जग सुख निष्फल जानि जिय, भजो सदा जिनराज ॥ ७६ ॥

रहंहं । हंजुग आदिरकार कह, सुनिये पूछनहार। अशुभ उदय फल अशुभ है,जानहु निज उर धार॥७७॥ मति विश्वास करो हिये, मित्र बंधु जिय जानि। शत्रु होय ये परिनवहिं करहिं वित्तकी हानि ॥ ७८ ॥ धनचिन्ता नित करत हौ, सो सुपनेहु नहिं होइ। धरम चिन्ति कुल देव जजि, तातै कछु सुख जोइ ॥ ७९ ॥

रहंत । रहं तासुपर प्रगट त;सुनि फल पूछनहार। याको फल मैं कहा कहों; सब सुखको दातार ॥ ८० ॥ विद्या लाभ कवित्तता; सुफल लाभ व्यवहार। वनिता सुतको लाभ ह्वै, द्रव्यलाभ व्यापार ॥ ८१ ॥ मित्रबंधु वसनाभरण, सहित समागम होइ। वहहु सुखित परिवार सों, कुलदेवीकृत जोइ ॥८२॥

रतअ । रत अ वरन पांसा कहत, तुव सम्मुख सौभाग। अरथागम कल्याणकर, असन सुखद अनुराग ॥ ८३ ॥ मंत्रजंत्र औषधविधै, सकल सिद्ध ध्रुव होइ। चित चिन्तित पुत्रादि सुख, निश्चय पैहैं सोइ ॥ ८४ ॥

रतर । रतर वरन पासा कहत, सुनि पूछक गहि मौन। उद्यममें लक्ष्मी वसै, ज्यों पंखेमें पौन॥८५॥ तातें उद्यम करहु तुम,

अरथलाभ तहं होइ। तनय धरनि धरनो मिले, नृप सनमाने सोय ॥ ८६ ॥ वसन मिले घोड़ा मिले, अनायास ह्वै काज। शुभ-मंगल तोहि सर्वदा, सेयें श्रीजिनराज ॥ ८७ ॥

रतहं। रतहं कहत प्रचारिकै, सुनि पूछक दे कान। पहिले कष्ट बहुत सहे, सो अब गये सुजान॥८८॥धनकी चिंता रहत-चित, सो सब पूरन होहि। वनिता सुत बसनाभरन निश्चल मिलि-हैं तोहि॥८९॥ आधिव्याधि दुख नसहिं सब, चिंता करहु न कोय। देवधर्म परसादसों, काज सफल सब होय॥९०॥

रतत। रतत वरन सुनि पूछक,सकल सुफल तुव काम। मनवांछित धनसंपदा, पै हौ अति अभिराम॥९१॥ जो कारज चितवत रहौ, अनायास सो होय। मनमें मति संशय करो, धर्मबुद्धि फल जोय॥९२॥ शिवहित चाहत तप धरन, तामहं ह्वै है सिद्धि। गहो जिनेश्वर कथित तप ज्यों होवै सुखवृद्ध॥९३॥

अथ हंकारादि तृतीय प्रकरण।

हं अअ। हं अअ वर्न परे जहँ आई। तासु सुनो फल है दु-चिताई। सूचत कष्टरु चित्त विनाशं। लोकविषैं निरआदरभासं॥९४॥ संगरमें नहिं जीत दिखावे। उद्यममें नहिं लाभ लहावे। जाहु जहां कछु कारज हेती। सिद्ध न होय तहां तुम सेती॥९५॥ त्याग करो यह कारज यातें। सेवहु श्र जिनधर्मसुधा तें। धर्म विना सुखको नहिं लेखा। श्रीभगवान कहैं जिन देखा॥९६॥ रोग निवार अरोग शरीरं। पुष्ट महा वलपौरुष धीरं। चाहत हो परदेश सिधारो। होय मिलाप तहां शुभ सारो॥९७॥

हं अर । हंअर भाषत है सुख सारा । होय मनोरथ सिद्ध तुमारा । अर्थ तिया सुखमंगलताई । आनंदसंजुत बांधव भाई । ॥६८॥ उद्यममें धन प्रापति जानो । देशविदेश जहां मनमानो । रोगीको रुज जाय नसाई । बांधवमित्र मिलैं सब आई ॥६६॥ देव अराधहु भाव लगाई । सो मनवांछित सिद्ध कराई । ज्यों चिन्तामणि पायपै जानो । त्यों जिनधर्म न आनंद पानो ॥१००॥

हं अहं । हं अरुहंमत्र जब अकारं । तो सुनि पूछनहार विचारं । कोमल चित्त तुमार दिखाई । शत्रु सुमित्र गिनो सबनाई ॥ १०१ ॥ तासहितैं धन आप गंवायौ । कालसुभाव नहीं लख पायो । है कलिकालकराल विचारे । तैं अति साधु सुभाव सुधारे ॥१०२॥ जो कछु पूर्व भयौ धन हान । सो सब तोहि मिले सुखदान है तुमको नित प्रापति आगे । निश्चय जान अर्थ अनुरागे ॥१०३॥

हं अत । हं अत आय जनावत तातैं । मंगल मंजु समाजसुखातैं । पुत्र सुमित्र समागम होई । देशाराधन लाभ बहोई ॥१०४॥ धनकी चिन्ता करत हो, शीघ्रहि पैहो सोय । द्रव्य पुत्र वनिता वसन, सफल प्रापती होय ॥ १०५ ॥ कुशव्याधि अब मिट गई, देव धरम परसाद । सुफल काज नित जानि जिय, भजहु जिनेसुरपाद ॥ १०६ ॥

हरअ । हंरअ आय दिखावत ऐसो । चिंतित काज सरै तुव तैसो ॥धान्यधनादिक लाभ दिखाई । कोरन देश दिशंतर जाई । ॥ १०७ ॥ भूप करै सन्मान तुम्हारा । देश धरा धन देइ उदारा ॥ प्रीति करै तुमसों सब कोई । यामहं संशय रंच न होई ॥ १०८ ॥

हंरर । हंरर अक्षर भाषत सांचा। तो मनमें उद्वेग उमाचा। वित्त कछू अब छीजइ भाई। पीछे होय सुखी अधिकाई ॥१०६॥ संपत संतत मित्र पियारे। होहि सदा तोहि मंगलकारे॥ अर्थ बढ़े घरमें सुखदाई। कीरति देशदिशंतर जाई॥११०॥ श्रीजिन धर्मप्रभाव विचारो। है सब कारज सिद्ध तुमारो॥ यामें संशय रंच न मानो। सेवहु श्रीजिनराज सयानो॥ १११॥

हंरहं । मध्यरकार जहां छबि देई। हं जुग आदिरु अन्त परेई॥ उत्तम लाभ लसै फल ताको। पुत्र विवाह भविष्यति जाको ॥ ११२॥ नारि मिलै घर संपत आवै। बैर मिटै हित प्रीति जनावै॥ संगर बाद विवादमंझारी। होय विजय तुव आनंदकारी ॥ ११३॥ दीखत है शुभभाग तिहारो। यामें संशय रञ्च न धारो॥ श्री जिनचन्दपदाम्बुज ध्यावो। ताकरि पूरण पुन्य कमावो॥११४॥

हंरत । हंरत वर्न बखानत ऐसे। कारज सिद्ध लसै सब जैसे। उद्यममें लछमी चिरलाभं जुद्धरुजूत विजै तुम साजं॥११५॥ लाभ लसैं सब ठौर तुमारे। हानि हमें नहिं दीखत प्यारे। किंचित सोच वसै मनमाहीं। तासु हमें कछु संशय नाहीं॥११६॥॥ शीघ्र मिटै वह शोच तुमारा। ह्वै घर मङ्गल मंजुल सारा। श्रीजिनधर्म अराधहु जाई। संजम दान करो सुखदाई॥११७॥

हंहंअ । हं जुग अन्त अकार उचारौ। कारज सिद्ध समस्त तुमारो॥ धामविषैं धन है अधिकाई। पुत्र सुपौत्र बढ़ैं सुखदाई ॥११८॥ बांधवमित्रसमागम सूचै। जो परदेश विषैं अविमूचौ (?)। संपत एकमंझार पियारे। है लच्छिलाभ तुमें अधिकारे॥११॥ इष्ट

पदांवुज सेवहु जाई। सर्व मनोरथ सिद्ध कराई ॥ मङ्गल प्रश्न हिये रखि लीजे। श्रीजिनवैनसुधारस पीजै ॥ १२० ॥

हंहंर । हं जुग अन्त रकार पुकारे। मंगल मोद समस्त तुह्मारे ॥ पुत्रविवाह अवश्यक होऊ। जज्ञ विधान बनै कछु सोऊ ॥ १२१ ॥ तासु प्रसाद सु संपति भूरी। है धन धान्य वस्त्र परचूरी ॥ मङ्गलधाम बढ़ै अधिकाई। जाहु जहां तहं लाभ लहाई ॥ १२२ ॥ देव जजौ जपि दान करीजै। संजम होम सबै विधि कीजै ॥ पुन्य किये सुख संपति नाना। बालगुपाल सबै यह जाना ॥ १२३ ॥

हंहंहं । हं तिहुं आय परैं जब पासा। है तहं मङ्गलमन्दिर खासा ॥ सर्व मनोरथ सिद्धि प्रकासै। अर्थ सुलाभ प्रजाजुत भासै ॥ १२४ ॥ भूमि मिलै रनमें जय पावै। उद्यममें बहु लच्छि कमावै ॥ बांधव मित्रनसों अति नेहं। रोपत है वरधर्म सुगेहं ॥ १२५ ॥ आनन्द सर्व भविष्यति तोही। यों प्रतिभासत है सुनि मोही ॥ कारज सिद्धि समस्त तुमारा। सेवहु धर्म लहो भव पारा ॥ १२६ ॥

हंहंत । हं जुग अन्ततकार दिखाई। उत्तम लाभ सबै तसु भाई ॥ चाहत हौ परदेश पधारे। है तहं सिद्धि मनोरथ प्यारे ॥ १२७ ॥ खेती वानिजमें सब ठाईं। सर्व फलै मनवांछित भाई ॥ श्रीधनधान्य सुकंचन आदी। जे सुख संपति अर्थ अनादी ॥१२८॥ ते सब तोहि मिलैं मनमाने। देव गुरू दृढ़भक्ति विधाने ॥ यों सुनि चित्तविषै थिर होई। श्रीजिनराज भजो भ्रम खोई ॥ १२९ ॥

हंतअ । हंतअ वचन परै जब पासा । तो सुनि अर्थ प्रतच्छ प्रकासा ॥ तैं चितमें परसंपति चाहै । लोभ बढ्यो ताहि देखत का है ॥१३०॥ तोष कियैं धन प्रापति होई, वेद पुरान पुकारत योंई ॥ लोभ निवारि करो सब चिंतं । भावि जु होय सो होवहि मिंतं ॥ ॥ १३१ ॥ जाय वितीतै जब कछु काला । अर्थ सुलाभ तबै तुव भाला ॥ यामैं संशय रंच न आनो । भाषत श्रीअरहंत प्रमानो ॥

हंतर । हंतर यों दरशावत आई । तो मनमें परवित्त बसाई ॥ चिंतत है सोइ प्रापति होई । ताकरि संपति आनि मिलोई ॥१३३॥ अर्थ समागम कीर्ति अनिद्या । प्रापति है तोहि सुन्दर विद्या ॥ जो कछु पूरब द्रव्य गंवायौ । सो सब आनि मिलै मन भायौ ॥ ॥ १३४ ॥ जो तुम कारज चेतहु प्यारे । सो सब होई सिद्धि तुमारे ॥ यों जिय जानि तजो दुचिताई । सेवहु श्रीपरमातम जाई ॥ १३५ ॥

हंतहं । हं जुगके मधि होइ तकारं । तासु सुनो फल पूछन हारं ॥ तो मनमें विपरीत लसो है । चोरि जूवकी ताप वसी है ॥ ॥ १३६ ॥ ता करिके दुःख पाप सहै हो । लोकविषैं अपकीर्ति लहै हो ॥ नास भयो जसरास तुमारो । यों लघु सीख सुनो उर धारो ॥ १३७ ॥ अन्य कछू करतव्य विचारो । तामहं वांछित सिद्ध तुमारो ॥ अर्थ बढ़ै धन धर्म बढ़ाई । यों दरसावत श्रीगुरु भाई ॥ १३८ ॥

हंतत । हंतत भाषत उत्तम तोही । जो मन वांछहु होवहि सोही ॥ मंगल धाम मिलै धन धान्यं । जाहु विदेश तहां बहु

माम्यं ॥ १३९ ॥ मंत्र सु जंत्ररु भेष जताई । सैन्य सुथंभन मोहन भाई ॥ और जिती जगमें वर विद्या । तोहि मिलैं भ्रम त्याग निषिद्या ॥ १४० ॥

अथ तकारादि चतुर्थ प्रकरण ।

तअअ । जहं तअअ वरन पासा ढरंत । तहं सुनि पूछक जो फल कहंत ॥ जो करहु देव पूजा पुनीत । तो पैहो अभिमत फल विनीत ॥ १४१ ॥ सुत पोत्र सुवट धन धान्य लाहु । यह मिलैं तोहि वांछित उछाहु ॥ व्यापारमाहिं बहु मिले दर्व । अरु जून विजय नैं लहै सर्व ॥ १४२ ॥ यामें मति चिन्ता मानु मित्त । निज इष्ट देव पद भजहु नित्त ॥ विन पुन्य नहीं सुख जगत माहिं । जिमि बीज बिना नहिं तरु लगाहिं ॥ १४३ ॥

तअर । जब तअर प्रगट होवे सुजान । तब मध्यम फल जानो निदान ॥ चित चाहहु वनिता पुरुष आदि । सो आस तजहु सुनि भेदवादि ॥ १४४ ॥ निजभावीवश ये मिलहि सर्व । परिवार कुटुंबादिक सुदर्व ॥ पहिले जो कछु धन भयो हान । सोऊ न मिलै अब ही सयान ॥ १४५ ॥ कछु काल व्यतीत भये समस्त । ह्वै अथ लाभ तुमको प्रशस्त ॥ यह जान हिये निरधारवीर । भजि श्रीपति पद सब टरै पीर ॥ १४६ ॥

तअहं । तत्ता अकार हंकार आय । हे पूछक तोसों इमि कहाय ॥ दिनरात तोहि धनहेत चाह । मनमें यह वर्तत है कि नाह ॥१४७॥ सो पुन्य बिना कहु केम होय । हैं दिन तेरे अति नष्ट जोय ॥ कछु दिवस वितीत भये प्रमान । धनलाभ होय तोको निदान ॥१४८॥

तीस कोड़ाकोड़ी सत्तर करोड़ सत्तर लाख बियालीस हजार सात सौ मुनियोंकेसहित निर्वाण प्राप्त हुए हैं. इस कूटके दर्शन करनेका फल एक लाख उपवासके फलके तुल्य है। चौथे **अविचलकूटसे** सुमतिनाथ तीर्थंकर एक कोड़ाकोड़ी चौरासी करोड़ बहत्तरलाख इक्यासी हजार सात सौ मुनियोंसहित मोक्ष पधारे हैं। इस कूटके दर्शन करनेका फल एक करोड़ उपवास करनेके समान है। पांचवें **मोहनकूटसे** पद्मप्रभ तीर्थंकर निन्यानवै कोड़ाकोड़ी सत्तानवै करोड़ सत्तासी लाख बियालीस हजार सातसौ मुनिसहित मोक्ष प्राप्त हुए हैं। इस कूटके दर्शनका फल एक करोड़ उपवास करनेके तुल्य है। छठे **प्रभास** कूटसे सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर चौरासी कोड़ाकोड़ी चौरासी करोड़ बहत्तर लाख सात हजार सात सौ ब्यालीस मुनिसहित मुक्ति गये हैं। इस कूटके दर्शन करनेका फल बत्तीस कोड़ाकोड़ी उपवासके बराबर है। सातवें **ललितकूटसे** चन्द्रप्रभ तीर्थंकर हजार मुनिसहित मोक्ष प्राप्त हुए हैं। इनके सिवाय वहांसे चौरासी अरब बहत्तर करोड़ अस्सीलाख चौरासी हजार पांच सौ पचपन मुनि और भी मुक्ति गये हैं। इस कूटके दर्शन करनेका फल सोलहलाख उपवासके तुल्य है। आठवें **सुप्रभ** कूटसे श्रीपुष्पदन्त तीर्थंकर हजार मुनिसहित मुक्ति पधारे हैं तथा निन्यानवें करोड़ नव्वेलाख सात हजार चार सौ अस्सी मुनि और भी वहांसे मुक्ति गये हैं। इस कूटके दर्शन करनेका फल एक करोड़ उपवासके बराबर है। नवमें

विद्युतवर कूटसे शीतलनाथ तीर्थंकर एक हजार मुनिसहित मोक्ष गये है औरभी वहांसे अठारह कोड़ाकड़ी बियालीस करोड़ बत्तीस लाख बियालीस हजार नौसे पांच मुनियोंने मुक्ति पाई है। इस कूटके दर्शनका फल भी एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है। दशवें **संकुल** कूटसे श्रेयांसनाथ तीर्थंकर एक हजार मुनिसहित मोक्ष गये हैं और तथा छयानवे कोड़ाकोड़ी छयानवें करोड़ छयानवें लाख नवहजार पांचसौ बियालीस मुनियोंने और भी वहांसे मुक्ति पाई है। इसकूटके दर्शन करनेका फल भी एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है।

चंपापुरसे वांसुपूज्य तीर्थंकर हजार मुनिसहित मोक्ष पधारे हैं। सम्मेदशिखरके ग्यारहवे **वरिसंवल** कूटसे विमलनाथतीर्थंकर हजार मुनिसहित मोक्ष गये हैं। और छह हजार छहसौ तथा सत्तर कोड़ाकोड़ो साठ लाख छह हजार सात सौ बियालीस मुनि औरभी मुक्ति गये हैं। इसकूटके दर्शनका फल एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है। बारहवें **स्वयंभू** कूटसे अनंतनाथ तीर्थंकर हजार मुनिसहित मोक्ष गये हैं। इनके सिवाय पचहत्तर हजार, सातसौ तथा छयानवे कोड़ाकोड़ी सत्तर लाख सत्तरहजार सात सौ मुनि और भी मोक्ष गये हैं। इस कूटके दर्शनका फल एक करोड़ उपवास करनेके तुल्य है। तेरहवें **सुदत्तवर** कूटसे धर्मनाथ तीर्थंकर आठसौ एक मुनिसहित मोक्ष प्राप्त हुए हैं। तथा इसी कूटसे उन्नीस कोड़ाकोड़ी उन्नीस करोड़ नौ लाख नौ हजार सात सौ पंचानवे मुनि और भी मुक्त

हुए हैं, दर्शन करनेका फल एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है, चौदहवें **शान्तिप्रभ** कूटसे श्रीशांतिनाथ तीर्थंकर नौ सौ मुनिसहित मुक्तिधामको गये हैं, तथा इसी कूटसे नौ सौ कोड़ा-कोड़ी छयानवें करोड़ बत्तीस लाख छयानवें हजार सात सौ बियालीस मुनियोंने और भी पंचमगति पाई है। इसके दर्शन करनेका फल एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है। पन्द्रहवें **ज्ञानधर** कूटसे कुंथुनाथ तीर्थंकर हजार मुनिसहित मोक्ष पधारे हैं। तथा छयानवें कोड़ाकोड़ी छयानवे करोड़ बत्तीसलाख छयानवे हजार सात सौ ब्यालीस मुनि और भी मोक्षधामको गये हैं। दर्शनकरनेका फल एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है। सोलहवें **नाटक** कूटसे अरनाथ तीर्थंकर हजार मुनि-सहित मोक्ष गये हैं. तथा निन्यानवै करोड़ निन्यानवै लाख निन्यानवै हजार मुनियोंने और भी मुक्ति लक्ष्मी प्राप्त की है। इस कूटके दर्शन करनेका फल छयानवै करोड़ उपवास करने-के बराबर है। सत्रहवें **संवलकूटसे** श्रीमल्लिनाथ तीर्थंकर पांच सौ मुनियोंके सहित मुक्ति गये हैं। तथा छयानवें करोड़ मुनि औरभी वहांसे परमपदको प्राप्त हुए हैं। इसका दर्शन करना एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है. अठारहवें **निर्जर** कूटसे मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर हजार मुनि सहित मुक्त हुए हैं तथा निन्यानवें कोड़ाकोड़ी, सत्तानवै करोड़ नो लाख नौ सौ निन्यावै मुनि औरभी वहांसे मुक्त धामको गये हैं। इस टोंकके दर्शनका फल एक करोड़ उपवास करनेके समान है। उन्नीसवें

मित्रधर कूटसे नमिनाथ तीर्थंकर हजार मुनिसहित निर्वाण प्राप्त हुए हैं, तथा नौ सौ कोड़ाकोडी पैंतालिस लाख सात हजार नौ सौ बियालीस मुनि औरभीं कर्मोसे छूटे हैं। इस टोंकके दर्शनका फल एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है।

गिरनार पर्वतसे श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर पांच सौ छत्तीस मुनि सहित मोक्ष प्राप्त हुए हैं। तथा बहत्तर करोड़ सात सौ मुनि और भी गिरनार पर्वतसे मुक्त हुए हैं।

सम्मेदशिखरके बीसवें सुवर्ण भद्रकूटसे श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकर पांच सौ छत्तीस मुनिसहित परमधामको सिधारे हैं। तथा चौरासी लाख मुनि और भी वहांसे मुक्त गयेहैं। इस कूटके दर्शन करनेका फल एक करोड़ उपवास करनेके बराबर है।

इसके पश्चात् श्रीगौतमगणधर बोले, हे राजन्! ये महावीर भगवान् पावापुरीके पद्मसरोवरमेंसे छत्तीस मुनियोंके सहित मोक्ष जावेंगे। तथा शिखरजीकी जिन्होंने पूर्वकालमें यात्रा की है, उनमेंसे थोड़ेसे नाम मैं कहता हूं। सगर, सागर, मघवा, सनत्कुमार, आनन्द, प्रभसेन, ललितदंत, कुंदसेन, सेनादत्त, वरदत्त, सोमप्रभ, चारुसेन, आदि इनके सिवाय और भी हजारों राजाओंने यात्राकी है, परन्तु उनमेंसे दर्शन केवल उन्हींको हुए हैं, जो भव्य थे, अभव्योंको दर्शन नहीं मिलते।

श्रेणिक—हे भगवन्! शिखरजीकी यात्रा करनेका फल जो कुछ आपने कहा, सो तो यथार्थ है परन्तु उससे अधिक तथा सम्पूर्ण फल और क्या है, वह कृपा करके कहो।

गौतमस्वामी—हे राजन्! शिखरजीकी यात्रा करनेवाला फिर संसारमें अधिक नहीं भटकता। उनचास भव लेकर वह जीव पचासवें भव अवश्य ही सिद्धस्थानमें जाकर अजर अमर अखंड सदा जागती जोत होकर अचल रहता है, यह नियम है। इसके सिवाय यात्रा करनेवाला नरक तिर्यंच गतिमें तथा स्त्रीपर्यायमें भी जन्म नहीं लेता।

श्रेणिक—यदि ऐसा है, तो भगवन् रावणने शिखरजीकी यात्रा की थी, फिर उसे नरकगति क्यों प्राप्त हुई?

गौतम०—रावण शिखरजीकी यात्रा करनेके लिये नहीं किन्तु त्रैलोक्यमंडल हाथीको पकड़नेके लिये मधुवन गया था। इसलिये वह यात्राके फलका भागी न हो सका।

श्रेणिक—भगवन्! यदि कोई बिना भावसे शिखरजीकी यात्रा करे, तो उसकी नरक तिर्यंच गति छूटे कि नहीं?

गौतम०—राजन! जिस प्रकारसे बिना भावसे खाई हुई मिश्री मीठी लगती है, और दवाई रोगको शांत करती है, उसी प्रकारसे बिना भावसे की हुई यात्रा भी ऐसा नहीं है कि, फलवती न हो।

श्रेणिक—भगवन्! आपने कहा कि, भव्यको यात्रा होती है, परन्तु अभव्यको नहीं होती, सो यह बतलाइये कि, खास शिखरजीमें भीलादिक तथा पृथ्वी जल वनस्पति एकेन्द्रियादिक जीव राशि हैं, वे सब भव्य हैं अथवा अभव्य?

हर रविकला भव शस्य कों अमृत झरो ॥ २ ॥ वस्त्राभरण बिन शांति मुद्रा सकल सुरनर मन हरे । नाशाग्र दृष्टि विकार वर्जित निरखि छवि संकट टरे ॥ तुम चरण पंकज नख प्रभा नभ कोटि सूर्य प्रभा धरे । देवेन्द्र नाग नरेन्द्र नमत सुमुकुटमणि द्युति विस्तरे ॥ ३ ॥ अंतर बहिर इत्यादि लक्ष्मी तुम असाधारण लसे । तुम जाप पाप कलापनासे ध्यावते शिव थल बसे मैं सेय कुदृग कुबोध अब्रत चिरभ्रमो भववन सबै ॥ दुख सहे सर्व प्रकार गिर सम सुख न सर्षप सम कवे ॥ ४ ॥ पर चाह दाह दहो सदा कबहूं न साम्य सुधा चखो । अनुभव अपूरव स्वादु बिन नित विषय रस चारो भखो ॥ अब बसो मो उर में सदा प्रभु तुम चरण सेवक रहों । वर भक्ति अतिदृढ़ होहु मेरे अन्य विभव नहीं चहों ॥ ५ ॥ एके-न्द्रियादिक अन्तग्रिवक तक तथा अन्तर घनी । पाये पर्याय अनन्त-वार अपूर्व सो नहिं शिव धनी ॥ संसृत भ्रमण तें थकित लखि निज दासकी सुन लीजिये । सम्यक दरश वर ज्ञान चारित पथ विहारी कीजिये ॥ ६ ॥

(३) विनती भूधर कृत ।

गीता छन्द

पुलकंत नयन चकोर पक्षी हंसत उर इन्दीवरो । दुर्बुद्धि चकवी विलख बिछुड़ी निबड़ मिथ्या तम हरो ॥ आनंद अम्बुज उमग उछरो अखिल आतम निरदले । जिम बदन पूरण चन्द्र निरखत सकल मन वांछित फले ॥ १ ॥ मुझ आज आतम भयो पावन आज विघ्न नशाइयो । संसार सागर तीर निवटो अखिल

तत्व प्रकाशियो ॥ अब भई कमला किंकरी मुझ उभय भव निर्मल ठये। दुख जरो दुर्गति वास निवरो आज नव मंगल भयो ॥ २ ॥ मनहरण मूरति हेर प्रभुकी कौन उपमा ल्याइये। मम सकल तनके रोम हुलसे हर्ष और न पाइये। कल्याण काल प्रत्यक्ष प्रभुको लखें जो सुर नर घने। तिस समयकी आनन्द महिमा कहत क्यों मुखसे बने ॥ ३ ॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको और बांछा ना रही। मम सब मनोरथ भये पूरण रङ्क मानो निधि लही। अब होहु भवभव भक्ति तुम्हरी कृपा ऐसी कीजिये। कर जोर भूधरदास विनवे यही वर मोहि दीजिये ॥ ४ ॥ इति ॥

(४) विनती भूधरदास कृत।

अहो जगत गुरु देव सुनिये अर्ज हमारी। तुम प्रभु दीन दयालु मैं दुखिया संसारी ॥१॥ इस भव वनके माहिं काल अनादि गमायो। भ्रमत चतुर्गति माहि सुख नहिं दुख बहु पायो ॥२॥ कर्म महा रिपु जोर ये कलकान करें जी। मन मानें दुख देह काहूसे नाहिं डरें जी ॥ ३ ॥ कबहूं इतर निगोद कबहूं कि नर्क दिखावे। सुर नर पशुगति माहि बहु विधि नाच नचावें ॥४॥ प्रभु इनको परसंग भव भव माहि बुरो जी। जो दुख देखे देव तुमसे नाहिं दुरो जी ॥५॥ एक जन्मकी बात कहि न सकों सब स्वामी। तुम अनन्त पर्याय जानत अन्तर यामी ॥ ६ ॥ मैं तो एक अनाथ ये मिल दुष्ट घनेरे किये बहुत बेहाल सुनिये साहब मेरे ॥ ७ ॥ ज्ञान महानिधि लूट रङ्क निबल कर डारो। इन ही मो तुम माहि हे प्रभु अन्तर पारो ॥८॥ पाप पुण्य मिल दोय पायन बेरी डारी। तन कारागृह माहि मूंद दियो दुख भारी ॥९॥ इनको नेक बिगार मैं कुछ नाहिं करोजी

किम कारण जगबन्धु बहुविधि बैर धरो जी ॥१०॥ अब आयो तुम पास सुन कर सुयश तुम्हारो । नीति निपुण महाराज कीजे न्याय हमारो ॥ ११ ॥ दुष्टन देहु निकास साधुनको रख लीजै ॥ बिनवे भूधरदास हे प्रभु ढील न कीजे ॥ १२ ॥

(५) विनती नाथूराम जी कृत ।

दोहा—चौबीसो जिन पद कमल, बन्दन करों त्रिकाल ।
करो भवोदधि पार अब, काटो बहु विधि जाल ॥ १ ॥

छन्द ।

ऋषभनाथ ऋषि ईश तुम ऋषि धर्म चलायो । अजित अजित अरि जीत बसु विधि शिवपद पायो ॥ संभव संभ्रम नाशि बहु भवि बोधित कीने । अभिनन्दन भगवान अभिरुचि कर व्रत दीने ॥ ३ ॥ सुमति सुमति वरदान दीजे तुम गुण गाऊं । पद्म- प्रभु पदपद्म उर धर शीश नवाऊं ॥ ४ ॥ नाथ सुपारस पास राखो शरण गहोंजी । चन्द्रप्रभू मुखचन्द्र देखत बोध लहोंजी ॥ ५ ॥ पुष्पदन्त महाराज बिकसत दन्त तुम्हारे ॥ शीतलशीतल बैन जग दुःखहरण उचारे ॥ श्रेयान्सनाथ भगवान् श्रेय जगतको कर्त्ता । बासपूज्य पद वास दीजे त्रिभुवन भर्त्ता ॥ ७ ॥ विमल बिमल पद पाय बिमल किये बहु प्राणी । श्रीअनन्त जिनराज गुण अनन्त के दानी ॥ ८ ॥ धर्मनाथ तुम धर्मतारण तरण जिनेश । शान्तिनाथ अघ ताप शान्ति करो परमेश ॥ कुंथुनाथ जिनराज कुंथु आदि जिय पाले । अरह प्रभू अरि नाश बहु भव के अघ टाले ॥१०॥ मल्लिनाथ क्षण मांहि मोह मल्ल क्षय कीना । मुनिसुव्रत वृतसार मुनि गण

को प्रभु दीना ॥ ११ ॥ नमि प्रभुके पद पद्म नवत नशें अघ भारी। नेमि प्रभू तज राज जाय वरी शिव नारी ॥ १२ ॥ पारसवर्ण सरूप कहु भविक्षण में कीने। वीर वीर विधि नाश ज्ञानादिक गुण लीने ॥ १३ ॥ चार बीस जिनदेव गुण अनन्त के धारी। करों विविध पद सेव मैटो व्यथा हमारी ॥ १४ ॥ तुम सम जगमें कौन ताका शरण गहीजे। यासे मांगो नाथ निज पद सेवा दीजे ॥१५॥

दोहा—नाथूराम जिन भक्त का, दूर करो भव वास।
जब तक शिव अवसर नहीं, करो चरण का दास ॥

(६) विनती भूदरदास कृत।

वे गुरु मेरे उर बसो तारण तरण जहाज। वे गुरु मेरे उरबसो॥ आप तरें पर तार ही ऐसे ऋषिराज। वे गुरु मेरे उर बसो ॥टेक॥

मोह महा रिपु जीत के, छोड़ो है घरबार। भये दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥ १ ॥ रोग मदन तन ध्यावही, भोग भुजङ्ग समान। कदली तरु संसार है, इम छोड़े सब ज्ञान ॥ २ ॥ रत्नत्रय निज उर धरें, वर निरग्रन्थ त्रिकाल। मारो काम खबीस को, स्वामी परम दयाल ॥ ३ ॥ धर्म धरें दशलक्षणी भावन भाव सार। सहें परीषह बीस दो, चारित्र रत्न भण्डार ॥ ४ ॥ ग्रीषम ऋतु रवि तेज से सूखे सरवर नीर। शैल शिखर मुनि तप तपें, ठाड़े अचल शरीर ॥ ५ ॥ पावस रैनि भयावनी बरसै जलधर धार। तरु तल निवसें साहसी चाले झंझा बयार ॥ ६ ॥ शीत पड़े रवि मद गले दहे दाहे सब बनराय। ताल तरङ्गिणी तट विषे, ठाड़े ध्यान लगाय ॥ ७ ॥ इस विधि दुर्द्धर तप तपें, तीनो काल मंझार। लागे सहज स्वरूप में, तन से ममता टार ॥ ८ ॥

रङ्ग महल में सोवते, कोमल सेज बिछाय। सो अब पश्चिम रैनि में पोढे सम्बर काय ॥ ९ ॥ गज चढ़ चलते गर्व से सेना सज चतुरङ्ग। निरख निरख भूपद धरे। पालें करुणा अङ्ग ॥ १० ॥ पूर्व भोग न चिन्तवें, आगे वांछा नाहि। चहुं गति के दुख से डरे सुरति लगी शिव मांहि ॥ ११ ॥ ते गुरु चरण जहां धरे तहं, तहं तीरथ होय। सो रज मम मस्तक चढ़ी भूधर मांगे सोय ॥ १२ ॥

(७) क्षारें भाषा

दोहा—श्रीजिनवर चौबीसवर कुनयध्वांत हर भान।

अमित वीर्य्य दृग बोध सुख युत तिष्ठो इह थान। १।

(परि पुष्पांजलि क्षिपेत) इति स्थापनम्।

त्रिभङ्गी छन्द

गिरीश शीश पाण्डु पै सचीश ईश थापियो। महोत्सवो आनन्द कन्द को सबै तहां किया ॥ हमें सो शक्ति नाहिं व्यक्तदेखि हेतु आपना। यहां करें जिनेन्द्र चन्द्रकी सु बिम्ब थापना। २।

सुन्दरी छन्द।

कनक मणिमय कुम्भ सुहावने। हरि सुक्षीर भरे अति पावने ॥ हम सुवासित नीर यहां भरे। जगत् पावन पांव तरे धरे ॥ २ ॥ ॥ इति कलश स्थापना ॥

गीतिका छन्द।

शुद्धोपयोग समान भ्रम हर परम सौरभ पावनो। आकृष्ट भृङ्ग समूह गङ्ग समुद्भवो अति पावनो ॥ मणि कनक कुम्भ निशुम्भ किल्विष विमल शीतल भरि धरो। श्रम स्वेद मल निरवार जिन-त्रय धार दे पायन परों ॥ ४ ॥ ॥ इति जल धारा ॥

अति मधुर जिन ध्वनि सम सुप्रीणित प्राणि वर्ग स्वभावसों। बुध चित्त समहर पित्त नित्त सुमिष्ट इष्ट उछाव सों। तत्काल इक्षु समुत्थ प्राशुक रत्न कुम्भ विषैं भरों॥ यम त्रास तात निवार जिन त्रय धार दे पांयन परों॥५॥ इति इक्षु रस धारा॥

निष्टप्त क्षिप्त सुवर्ण मद दमनीय ज्यों विधि जैनकी। आयु प्रदा बल बुद्धिदा रक्षा सु यों जिय सैनकी॥ तत्काल मंथित क्षीर उत्थित प्राज्य मणि झारी भरों। दीजे अतुल बल मोहि जिन त्रय धार दे पांयन परों॥ इति घृत धारा॥

शरदाभ्र शुभ्र सुहाटक द्युति सुरशि पावन सोहनो। क्लैव्यक्त हर बल धरन पूरन पय सकल मन मोहनो॥ कद उष्ण गोधन तें समाहृत घट जटित मणि में भरों। दुर्वल दशा मो मेट जिन त्रय धार दे पायन परों॥ ७॥ इति दुग्ध धारा॥

वर विशद जैनाचार्य ज्यों मधुराम्ल कर्कशिता धरै। शुचि कर रसिक मथन विमथित नेह दोनों अनुसरै॥ गो दधि सुमणि भृङ्गार पूरन ल्याय करि आगे धरों। दुख दोष कोष निवार जिन त्रय धार दे पायन परों॥ ८॥ इति दधि धारा॥

दोहा—सर्वौषधी मिलाय के, भरि कञ्चन भृङ्गार।
यजों चरण त्रय धार दे, तारि तार भवतार॥ ९॥

॥ इति सर्वौषधी धारा॥

(८) प्रातःकालकी स्तुति।

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजनकी अब पूरो आस॥
ज्ञानभानुका उदय करो मम मिथ्यातमका हो अब नाश॥१॥
जीवोंकी हम करुणा पालें झूठ वचन नहीं कहैं कदा॥

परधन कबहुं न हरहुं स्वामी ब्रह्मचर्य ब्रत रहे सदा ॥२॥
तृष्णा लोभ बढ़ न हमारा तोष सुधा निधि पिया करें ॥
श्री जिन धर्म हमारा प्यारा तिसकी सेवा किया करें ॥३॥
दूर भगावें बुरी रीतियां सुखद रीतिका करें प्रचार ॥
मेल मिलाप बढावे हमसब धर्मोन्नतिका करें प्रचार ॥ ४ ॥
सुखदुखमें हम समता धारें रहें अचल जिमि सदा अटल ॥
न्याय मार्गको लेश न त्यागें वृद्धि करें निज आतमबल ॥५॥
अष्टकर्म जो दुःख हेतु हैं तिनके छयका करें उपाय ॥
नाम आपका जपें निरंतर विघ्नशोक सब ही टल जाय ॥६॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहीं चढ़े कदा ॥
विद्याकी हो उन्नति हममें धर्म ज्ञान हूं बढ़े सदा ॥ ७ ॥
हाथ जोड कर शीष नवावे तुमको भविजन खड़े खड़े ॥
यह सब पूरो आस हमारी चरण शरणमें आन पड़े ॥ ८ ॥

(६) सायंकालकी स्तुति

हे सर्वज्ञ ! ज्योतिमय गुणमणि बालक जनपर करहु दया
कुमति निशा अंधयारीकारी सत्य ज्ञान रवि छिपा दिया ॥१॥
क्रोध मान अरु माया तृष्णा यह बटमार फिरे चहुं ओर ॥
लूट रहे जग जीवनको यह देख अविद्या तमका जोर ॥ २ ॥
मारग हमको सूझे नांही ज्ञान बिना सब अन्ध भये ।
घटमें आप विराजो स्वामी बालक जन सब खड़े नये ॥ ३ ॥
सतपथ दर्शक जनमन हर्षक घट घट अंतरयामी हो ॥
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसके तुम ही स्वामी हो ॥ ४ ॥

घोर विपतमें आन पड़ा हूं मेरा बेरा पार करो ॥
शिक्षाका हो घर घर आदर शिल्पकला संचार करो ॥ ५ ॥
मेलमिलाप बढ़ावें हम सब द्वेष भावकी घटा घटी ॥
नहीं सतावें किसी जीवको प्रती क्षीरकी गटागटी ॥ ६ ॥
मातपिता अरु गुरुजनकी हम सेवा निशदिन किया करें ॥
स्वारथ तजकर सुखदें परको आशिश सबकी लिया करें ॥७॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहिं चढ़े कदा ॥
विद्याकी हो उन्नति हममें धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा ॥८॥
दोऊ कर जोरे बालक ठाढ़े करें प्रार्थना सुनिये दास ॥
सुखसे बीते रैन हमारी जिनमतका हो शीघ्र प्रकाश ॥ ९ ॥
मातपिताकी आज्ञा पालैं गुरुकी भक्ति धरें उरमें ॥
रहें सदा हम करतब तत्पर उन्नति कर निज २ पुरमें ॥१०॥

(१०) सङ्कटहरण विनती

हो दीनबन्धु श्रीपति करुणा निधानजी । अब मेरी व्यथा क्यों ना हरो वार क्या लगी ॥ टेक ॥ मालिक हो दो जहानके जिनराज आप ही । ऐबो हुनूर हमारा कुछ तुम से छिपा नहीं ॥ बेजान में गुनाह जो मुझ से बन गया सही । ककरी के चोर को कटार मारिये नहीं ॥ हो दीन० १ ॥ दुख दर्द दिलका आप से जिस ने कहा सही । मुशकल कहर बहर से लई है भुजा गही ॥ सब वेद और पुराणमें परमाण है यही । आनन्द कन्द श्रीजिनन्द देव है तुही ॥ हो दीन० २ ॥ हाथी पै चढ़ी जाती थी सुलोचना सती । गंगामें गिराहने गही गज राज की गती ॥ उस वक्तमें पुकार किया था तुम्हें सती । भयटारके उभार लिया हो कृपा पती ॥ हो

दीन०३ ।। पावक प्रचण्ड कुण्डमें उमण्ड जब रहा । सीतासे सत्य लेनेको जब रामने कहा ।। तुम ध्यान धरके जानकी पग धारती तहां । तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कमल लहलहा ।। हो० ।। जब चीर द्रौपदीका दुशासनने था गहा सबरे सभा के लोग कहते थे हा हा हा ।। उस वक्त भीर पीरमें तुमने किया सहा । पड़दा ढका सती का सुयश जगत में रहा ।। हो० ।। सम्यक्त शुद्ध शीलवन्ति चन्दनासती । जिस के नजीक लगती थी जाहर रती रती । बेड़ीमें पड़ी थी तुमें जब ध्यावती हुती ।। तब बीरधीर ने हरी दुःख द्वन्द की गती ।। हो० ६ ।। श्रीपालको सागर बिखे जब सेठ गिराया । उसकी रमासे रमने को आया था बेहया ।। उस वक्त के संकट सती तुमको जो ध्याया । दुःख द्वन्दफन्द मेटके आनन्द बढ़ाया ।। हो० । हरषेण की माता को जब शोक सताया । रथ जैनका तेरा चले पीछे से बताया ।। उस वक्त के अनशन में सती तुमको जो ध्याया । चक्रेश हो सुत उसके ने रथ जैन चलाया ।। हो० ८ ।। जब अंजना सतीको हुआ गर्भ उजाला । तब सासु ने कलंक लगा घरसे निकाला ।। बन वर्गके उपसर्गमें सती तुमको चितारा । प्रभु भक्तियुत जानके भय देव निवारा ।। हो०९ ।। सोमा से कहा जो तू सती शील विशाला । तो कुम्भमें से काढ़ भला नाग हो काला ।। उस वक्त तुम्हें ध्यायके सती हाथ जो डाला । तत्काल ही वो नाग हुआ फूलकी माला ।। हो० १० ।। जब राज-रोग था हुवा श्रीपाल राजको । मैना सती तब आपकी पूजा इलाज को ।। तत्काल ही सुन्दर किया श्रीपालराजा को । वह राज भोग२ गया मुक्तिराजको ।। हो० ११ ।। जब सेठ सुदर्शन को मृषा दोष

लगाया। रानीके कहे भूपने शूली पै चढ़ाया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठ ने निज ध्यान में ध्याया। शूली से उतार उसको सिंहासन पै बिठाया ॥ हो० १२ ॥ जब सेठ सुन्नाजी को वापी में गिराया। ऊपर से दुष्ट था उसे वह मारने आया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने दिल अपने में ध्याया। तत्काल ही जंजाल से तब उसको बचाया ॥ हो० १२ ॥ एक सेठके घरमें किया दारिद्र ने डेरा। भोजन का ठिकाना भी था नहीं सांझ सवेरा ॥ उस वक्त तुम्हें सेठ ने जब ध्यान में घेरा। घर उसके तबकर दिया लक्ष्मी का बसेरा ॥ हो० १४ ॥ बलि बादमें मुनिराज सों जब पार न पाया। तब रातको तलवार ले शठ मारने आया। मुनिराज ने निज ध्यानमें मन लीन लगाया। उस वक्त हो परतक्ष तहां देव बचाया ॥ हो० १५ ॥ जब रामने हनुमन्त को गढ़लङ्क पठाया। सीता की खबर लेनेको विफौर सिधाया ॥ मग बीच दो मुनिराज की लख आगमें काया। झटवार मूसलधारसे उपसर्ग बुझाया ॥ हो० २६ ॥ जिननाथ ही को माथ नवाता था उदारा। घेरेमें पढ़ा था वह कुम्भकरण विचारा ॥ उस वक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें उचारा। रघुबीरने सब पीर तहां तुरत निवारा ॥ हो० १७ ॥ रणपाल कुंवर के पड़ी थी पांवमें बेरी। उस वक्त तुम्हें ध्यानमें धाया था सवेरी। तत्काल ही सुकुमार की सब झड़ पड़ी बेरी। तुम राजकुंवरको सभी दुख द्वन्द निवेरी ॥ हो० १८ ॥ जब सेठके नन्दन को डसा नाग जु कारा। उस वक्त तुम्हें पीरमें धरधीर पुकारा ॥ तत्काल ही उस बालका बिषभूरि उतारा। वह जाग उठा सोके मानो सेज सकारा ॥ हो० १८ ॥ मुनि मानतुङ्गको दई जब भूपने पीरा। तालेमें किया

बन्द भरी लोहे जंजीरा। मुनीशने आदीशको थुत की है गम्भीरा। चक्रेश्वरी तब आनके झट दूर की पीरा ॥ हो०२० ॥ शिव कोटने हठता किया समन्तभद्र सो। शिवपिण्डकी बन्दन करो संको अभद्र सो ॥ इस वक्त स्वयम्भू रचा गुरु भाव भद्र सो। जिन चन्द्रकी प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्र सो ॥ हो० २१ ॥ सूवेने तुम्हें आनके फल आम चढ़ाया। मैंडक ले चला फूल भरा भक्त का भाया ॥ तुम दोनोंको अभिराम स्वर्गधाम बसाया। हम आपसे दातारको लख आज ही पाया ॥ २२ ॥ कपि स्वान सिंह नवल अज बैल विचारे। तिर्यंच जिन्हें रञ्च न था बोध चितारे इत्यादिको सुरधाम दे शिवधाममें धारे। हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे ॥ हो० २३ ॥ तुमहीं अनन्त जन्तु कार भय भीड़ निवारा। वेदो पुराणमें गुरु गणधरने उचारा। हम आपकी शरणागतिमें आके पुकारा। तुम हो प्रत्यक्ष कल्प वृक्ष इक्षु अहारा हो० २४ ॥ प्रभु भक्त व्यक्त जक्त भुक्त मुक्तके दानी। आनन्द कन्द वृन्दको हो मुक्तिके दानी। मोहि दान जान दीनबन्धु पातक भानी संसार विषय तार तार अन्तर यामी ॥हो० २५॥ करुणा निधान वानको अब क्यों न निहारो। दानी अनन्त दानके दाता हो संभारो वृष चन्द नन्द वृन्दका उपसर्ग निवारो। संसार विषमक्षारसे प्रभु पार उतारो ॥ हो दीनबन्धु श्रीपति करुणा निधानजी। अब मेरी व्यथा क्यों न हरो वार क्या लगी ॥ २६ ॥

(११) स्तोत्र भूदरदास कृत

दोहा—कर जिन पूजा अष्ट विधि, भाव भक्ति बहु भाय।
अब सुरेश परमेश थुति, करत शीश निज नाय ॥१॥

चौपाई ।

प्रभु इस जग समर्थ ना कोय । जासे तुम यश वर्णन होय । चार ज्ञान धारी मुनि थकें । हमसे मन्द कहाकर सकें ॥ २ ॥ यह उर जानत निश्चय कीन । जिन महिमा वर्णन हम कीन ॥ पर तुम भक्ति थके वाचाल । तिस बस होय गहूं गुण माल ॥३॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवन धनी । जय चन्द्रोपम चूड़ामणी ॥ जय जय परम धाम दातार । कर्म कुलाचल चूरण-हार ॥ ४ ॥ जय शिव कामिन कन्त महन्त । अतुल अनन्त चतुष्टय वन्त ॥ जय २ आश भरण बड़ भाग । तप लक्ष्मीके सुभग सुभाग ॥ जय २ धर्मध्वजा धर धीर । स्वर्ग मोक्षदाता वरवीर ॥ जय रत्नत्रय रत्न करण्ड । जाय जिन तारण तरण तरण्ड ॥ ६ ॥ जाय २ समोशरण शृङ्गार । जाय संशय बन दहन तुषार ॥ जाय २ निर्विकार निर्दोष । जाय अनन्त गुण माणिक कोष ॥ ७ ॥ जाय जय ब्रह्मचर्य्य दल साजा । काम सुभट विजायी भटराजा ॥ जाय जाय मोह महा तरु करी । जायजाय मद कुंजर केहरी ॥ ८ ॥ क्रोध महानल मेघ प्रचण्ड । मान मोह-धर दामिन दण्ड ॥ माया वेल धनंजाय दाह । लोभ सलिल शोषण दिन नाह ॥ ८ ॥ तुम गुण सागर अगम अपार । ज्ञान जाहाजा न पहुंचे पार ॥ तट हो तट पर डोले सोय । कार्य्य सिद्धि तहां ही होय । १० । तुम्हारी कीर्त्ति बल बहु बढ़ी । यत्न विना जाग मण्डप चढ़ी । और कुदेव सुयश निज चहैं । प्रभु अपने थल हो यश लहैं ॥ ११ ॥ जगति जीव घूमें बिन ज्ञान । कीना मोह महा विष पान ॥ तुम सेवा विष नाशक जड़ी । तह मुनि जन मिल निश्चय करी ॥ १२ ॥ जन्म जरा मिथ्या मत मूल । जन्म मरण

लागे तहां फूल ॥ सो कषद्रु बिन भक्ति कुठार । कटै नहीं दुख फल दातार ॥ १३ ॥ कल्प सरोवर चित्रा बेलि । काम पोरवा नव निधि मेल॥ चिन्तामणि पारस पाषाण । पुण्य पदारथ और महान ॥१४ ॥ ये सब एक जन्म संयोग । किञ्चित सुख दातार नियोग । त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव । जन्म २ सुखदायक देव ॥ १५ ॥ तुम जग बांधव तुम जग तात । अशरण शरण विरद विख्यात ॥ तुम सब जीवन रक्षापाल । तुम दाता तुम परम दयाल ॥ १६ ॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान । तुम सम दर्शो तुम सब जान । जयमुनि यज्ञ पुरुष परमेश ॥ तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥ १७ ॥ तुम जग भर्त्ता तुम जग जान । स्वामि स्वयम्भू तुम अमलान ॥ तुम विन तीन काल तिहुं खोय । नाहीं शरण जीवको होय ॥ १८ ॥ इससे अब करुणानिधि नाथ । तुम सन्मुख हम जोड़ें हाथ ॥ जबलों निकट होय निर्वाण । जग निवास छूटै दुख दान ॥१९॥ तब लों तम चरणाम्बुज बास । हम उर होय यही अरदास ॥ और न कछु बांछा भगवान । हो दयालु दीजे वरदान ॥ २० ॥

दोहा—इस विधि इन्द्रादिक अमर, कर बहु भक्ति बिधान ।
निज कोठे बैठे सकल, प्रभु सन्मुख सुख मान ॥२१॥
जीति कर्म रिपु ये भये, केवल लब्धि निवास ।
सो श्रीपार्श्व प्रभू सदा, करो विघ्न घन नाश ॥

(१२) अरिहन्त परमेष्टी मंगल ।

वन्दों श्रीअरिहन्त सिद्ध आचार्यजी । उपाध्याय नमि साधु भवधर आर्यजी । पंच परमपद श्रेष्ट जगति में ये कहे । इन ही के सुप्रसाद भव्यजन सुख लहे ॥ लहे लेत ले'यगे सुख मुक्ति

रमनीके सही ॥ अहमेन्द्र इन्द्र नरेन्द्र सुखकी तास उपमा है नहीं ॥ यासे तिन्होंके एक सौ तिरकाल गुण नित ध्याइये। उर नेम धरके पंच पदके पंच मंगल गाइये ॥ १ ॥ सम चतुर संस्थान सुगन्धित तन लसे। एक सहस्र गणि आठ सुलक्षण शुभ बसे ॥ मल मूत्र नहीं होय पसेव न होइये। क्षीर वर्ण वर रुधिर अतुल बल जोइये ॥ जोइये हितमित बचन सुन्दर रूपका ना पार जी। लख वज्र वृषभ नाराच्य सहनन जन्म दश गुण धारजी ॥ सुरभिक्ष योजन एक शतलों चार दिश जानिये। छाया विवर्जित चार आनन गगण गमन बखानिये ॥ २ ॥ नहीं बढ़े नख केश सकल विद्याधनी। प्राणी वाधा रहित सहिज अतिशय बनी ॥ नहिं होय उपसर्गाहार कवला नहीं। नेत्र नहीं टमकार ज्ञान गुण दश सही ॥ सही सब ही जीव केरे भाव मैत्री तहां बसें। सकलार्ध मागधी होय भाषा सुनत सब संशय नशें ॥ सब लोक में आनन्द बर्ते भूमि दर्पण सम छजे। आकाश निर्मल धान्य सब ही एकठे हो नीपजे ॥ ३ ॥ छः ऋतु के फल फूल फलें इकबार ही। भू तृण कंटक आदि रहित सुखकार हो ॥ मन्द सुगन्धि चले पवन सकल जन मन हरैं। गंधोदक की वृष्टि गगणसे सुर करें ॥ करें जाय जाय कार मुख से शब्द सुर आकाश में। सुर हेम कमल विहार करते धरत पद तल जास में। अष्ट मङ्गल द्रव्य राजाय धर्म चक्र चले तहां। ये देव कृत गुण जात चौदह जोड़ सब चौंतिस यहां। सोहे वृक्ष अशोक शोक हर लेत है। दिव्य ध्वनि सुन जीव मिथ्या तजा देत हैं ॥ सुरकृत पुष्प सुवृष्टि चमर चौंसट ढुरें। भामण्डल सुर गगण नाद दुंदुभी करें ॥ करें अपने हेतु को ये क्षत्रत्रय

शिर सोहना ॥ मणि जटित सिंहासन कनकमय लोकत्रय मन मोहना ॥ ये प्रातिहार्य मिलाय आठों जोड़ गुण ब्यालीस जी। ये ही जानावत प्रगट तुम को तीन जग के ईशजी ॥ दर्शन ज्ञान अनन्त विषें षट द्रव्य से । गुण पर्याय अनन्त लखे द्रष्टि सर्वके ॥ राजत सुक्ख अनन्तानन्त केवल धनी। अनन्त चतुष्टय जोड़ सकल छालिस गुणी। गणिये सुछालिस गुण विराजित देव अरिहंत सो लखो। गुण और कबलों कहों कैसे बुद्धि थोरी मैं रखों ॥ इन्द्र गणधर आदि जिन गुण गणत पार न पाइयो । गणि दोष अष्टादश जिनेश्वर मूल से जु नशाइयो। क्षुधा तृषा मद मोह जरा चिन्ता टरी। आरति विस्मय रोग शोक निद्रा हरी ॥ स्वेद खेद भय रोग हनो पुन द्वेषजी। जन्म मरण का दुख नहीं लव-लेश जी ॥ लवलेश इनका नाहिं यासे मोहि तारण तरणजी। भव दुख निवारण सुक्ख कारण मोहि अशरण शरणजी ॥ यासे सदा ही प्रात उठ छालीस गुण नित ध्याइये। उर नेम धर पद पञ्च में अरिहन्त मङ्गल गाइये ॥ ७ ॥

(१३) श्रीसिद्ध परमेष्ठी मंगल ।

तिहूं जग शिरतन बात बलय में जानियो। प्रारम्भ नभ क्षेत्र तहां उर आनियो ॥ मनुज क्षेत्र सम क्षेत्र महा अद्भुत सही। हाटक मणिमय मुक्ति शिला तासम कही ॥ कही तिहूं जग शीर्ष ऊपर क्षत्रके आकार जी। मध्य भाग योजन आठ मोटी अन्त अनुक्रम ढारजी। तापर विराजत सिद्ध शिव थल काय बिन बिन रूपजी। लख पूर्व तन से ऊन किंचित आत्मरूप अनूप जी ॥१॥

एक सिद्धके माँहि अनन्ते सिद्ध हैं । राजात गुण समुदाय लिये निज ऋद्धि हैं ॥ किंचित कायोत्सर्ग और पद्मासनं । सकल सिद्ध सम शीर्ष विराजात भासनं ॥ भासना आकार काजै लखो इक दृष्टान्त जी । सांचो करो इक मोम को फिर गारा लेप धरन्त जी ॥ सुकवाय ताको अग्नि देकर मोम काढ़न ठानिये । पोलारवा में रहै जैसी सिद्ध आकृति जानिये ॥ २ ॥ पौने सोलह सौ धनु महा गिनाय जी । बात वलय तन की सुलखो मोटाय जी । पन्द्रह सौ का भाग देव ताको सही । सवा पांच सौ धनुष होंय संशय नहीं ॥ संशय नहीं अवगाहना उत्कृष्ट सिद्धन की लखो । तन बातको मोटाई पुन: भाग नव लख का रखो ॥ अवगाहनादि जघन्य गिनले हाथ साढ़े तीन जी । पुनः मध्य भेद अनेक हैं अवगाहनाके बीत जी ॥ ३ ॥ मोहनी नामाकर्म महा बलवन्त जी । कीन्हीं बातिल बुद्धि सकल जग जन्तु जी ॥ ताहि मूल से नाश शुद्ध सम्पति लही । प्रगटी गुण सम्यक्त्व प्रथम अद्भुत सही ॥ सहीगुण यह जगतिके दुख नाशने को मूल है । या बिना सब ही अकारथ बासना बिन फूल है ॥ बिन नीव मन्दिर मूल बिन तरु नीर बिन सागर यथा । सम्यक्त्व गुण बिन सकल करणी सफल नाहीं सर्वथा ॥४॥ ज्ञानावरणी कर्म दयो सब टार जी । हस्त रेख सम-लोक अलोक निहार जी ॥ दूजे गुण तब ज्ञान शुद्ध सुप्रगट लहो । यासम और न कोइ जगति में गुण कहो ॥ कहो तीजो कर्म नामो दर्शना वरणी लखो । दीखे नहीं जाके उदय जिमि वस्त्र पर ढाकन रखो ॥ इस कर्मको विध्वंस करके लहो केवल दर्शना । गुण होय मिटे तब ही वस्तु देखन तर्सना ॥ ५ ॥ अन्तराय बलवान महा

दुःख देत है। जग जीवोंकी शक्ति सभी हर लेत है॥ याको हति निज वीर्य अनन्त लहाय जी। सो चौथा गुण वीर्य लखो मन ल्याय जी॥ मन ल्याय तिहुं जग मांहिं जानो नाम कर्म महान हैं। इस कर्म वश जग जीव चहुंगति भटकते हैरान हैं॥ याको हनो तब ही अमूर्त्ति भयो आतमराम है। सो मस्त गुण तब होत जगमें बहुर नाहीं काम है॥ ६॥ आयु कर्म से जीव चहूं गतिमें बसे। बंदीखाने मांाह यथा कैदी फंसे॥ याहि हरत गुण प्रगट होत अवगाहना। एक सिद्ध में सिद्ध अनन्त सम्भावना॥ सम्भावना जग जीव सब ही गोत्र विधि के वश परें। पद ऊंच नीच लहैं सुबहु विधि दुःख दावानल जरें॥ इस गोत्र कर्म विनाशने से भाव सम प्रगटे सदा। सो गुण अगुण लघु होय तब हीं ऊंच नीच न रहें कदा॥ ७॥ वेदनी कर्म वशाय जगति के जीव जी। भोगे दुःख अपार अचिंत सदीव जी॥ अव्यावाध गुण होइ हरे जब याहिजी। सुख दुःख दोनों रहित नहीं कछु चाह जी॥ चाह तिहुं जगकाल तिहुंके सुख इकट्टे कीजिये। तिनसे अनन्तः सुख है इक समय मांहि लहीजिये॥ यासे तिन्हों के आठ गुण को प्रात उठ नित ध्याइये। उर नेम धर के पंचपद में सिद्ध मंगल गाइये॥ ८॥

(१४) श्री आचार्यपरमेष्ठी मंगल।

दर्शन मोह विनाश आप दर्शन लहो। सोही दर्शनाचार भिन्न परसे कहो॥ स्वपर भेद लख ज्ञान थकी निज लीन जी। सो ही ज्ञानाचार लखो सु प्रवीणजी॥ प्रवीण निज पद माहिं थिर हो यही चरित्र गुण सही। इच्छा अभ्यन्तर रोक अनसन बाह्य गुण

तप जानहीं ॥ जब कष्ट बहु विधि आवता नहिं टरें यह गुण वीर्य जी। आचरें पंचाचार यह गुण लहें बहु धर धीर्य जी ॥१॥ वर्ष अयन ऋतु मास पक्ष आदिक तनी। करें सदा उपवास लहें गुण अनसनी ॥ पूर्ण ग्रास बत्तीस अन्न जलके गुणी। लेय तामें ऊन ऊनोदर सो मुनी ॥ मुनिचर्या निमित्त वनमें व्रत अटपटे धर चलें। व्रत परि संख्या कहो यह गुण और जानसे ना पलें ॥ कोई रसको तजें कबहुँ सर्व रस तजा देत हैं। गुण जान रस परित्याग सुन्दर महा अद्भुत भजात है ॥ २ ॥ गिरि कन्दर एकान्त रहत सु मसान मे। धरें ध्यान अनागार लीन निज ज्ञान में ॥ विव्यक्त शय्यासन सो कहत गुण याहि जी। साहस ऐसा धार ममत्व सो नाहिं जी ॥ नाहिं तनको तनक सो भी ममत तिनके उर बसे। पावस समय तरुके तले धरें ध्यान पातक सब नसे ॥ हेमन्त सरिता ग्रीषम गिरि शिर उग्र जो तप करें। गुण लखो काय कलेश येही सकल दुखको परिहरें ॥ ३ ॥ प्रातः धरें व्रत जेह सम्हाले सांझजीं। कोई लागो दोष लखें ता मांझ जी ॥ गुरुसे कह सब दोष दण्डको आचरें। प्रायश्चित्त गुण येह महा सुखको करें ॥ करें मन बच काय सेती देव गुरु श्रुतिका विनय। अरु पूजनीक पदार्थों तिनकी विनय गुण तप के गिनय ॥ रोगातियुत या बृद्ध मुनिवर देख वैयावृत धरें। उन्माद मद तज लखें वैयावृत्य गुण तब विस्तरें ॥ ४ ॥ पंच भेद स्वाध्याय आप नित ही करें। बोध बंधके हेतु परनको उच्चरें ॥ सो ही गुण स्वाध्याय सकलमें सारजी। नाशा दृष्टि लगाय खड़े अनगारजी ॥ अनगार दोनों कर लुभाये लीन निज आतम विषें।

१ क्षुधापरीषह—अनशन ऊनोदर तप पोषत हैं पक्ष मास दिन बीत गये हैं। जो नहीं बने योग्य भिक्षा विधि सूख अंग सब शिथिल भये हैं॥ तब तहां दुस्सह भूखकी वेदन सहित साधु नहीं नेक नये हैं। तिनके चरण कमल प्रति प्रति दिन हाथ जोड़ हम सीस नये हैं॥

२ तृषा परीषह—पराधीन मुनिवरकी भिक्षा पर घर लेयं कहें कछु नाहीं। प्रकृति विरुद्ध पारणा भुंजत बढ़त प्यासको त्रास तहां ही॥ ग्रीषमकाल पित्त अति कोपे लोचन दोय फिरें जब जाहीं। नीर न चहैं तीस से मुनिवर जयवन्तों वरतो जग माहीं॥

३ शीत परीषह—शीतकाल सब ही जन कम्पैं खड़े जहां वन वृक्ष दहे हैं। झंझा वायु वहे वर्षा ऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं॥ तहां धीर तटिनी तट चौपट ताल पालपर कर्म दहे हैं। सहैं सम्हाल शीत की बाधा ते मुनि तारण तरण कहे हैं॥

४ उष्ण परीषह—भूख प्यास पीड़ उर अन्तर प्रज्वले आंत देह सब दागे। अग्नि स्वरूप धूप ग्रीषमकी ताती वायु झालसी लागे॥ तपै पहाड़ ताप तन उपजै कोप पित्त दाहज्वर जागे। इत्यादिक गर्मीकी बाधा सहैं साधु धैर्य्य नहिं त्यागे॥

५—दंशमशक परीषह—दंश मशक माखी तनु काटें पीड़े बन पक्षी बहुतेरे। डसें व्याल विषहारे बिच्छू लगें खजूरे आन घनेरे॥ सिंघ स्याल शुण्डाल सतावें रीछ रोज दुःख देंय घनेरे। ऐसे कष्ट सहैं समभावन ते मुनिराज हरो अघ मेरे।

६ नग्न परीषह—अन्तर विषय वासना वर्त्तें बाहिर लोक लाज भय भारी। तातैं परम दिगम्बर मुद्रा धर नहिं सकें दीन

संसारी । ऐसी दुर्द्धर नग्न परीषह जीतें साधु शील व्रतधारी । निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके पायन धोक हमारी ॥

७ अरति परीषह—देश कालको कारण लहिके होत अचैन अनेक प्रकारैं । तब तहां खिन्न होयें जगवासी कलबलाय थिरता-पन छारैं । ऐसी अरति परीषह उपजत तहां धीर धैर्य्य उर धारैं । ऐसे साधुनके उर अन्तर बसो निरन्तर नाम हमारे ॥

८ स्त्री परीषह—जे प्रधान केहर को पकड़ैं पन्नग पकड़ पान से चम्पत । जिनकी तनक देख भौं बांकी कोटिन सूर दीनता जम्पत ॥ ऐसे पुरुष पहाड़ उठावन प्रलय पवन त्रिय वेद पयम्पन॥ धन्य धन्य ते साधु साहसी मन सुमेरु जिनको नहिं कम्पत ॥

९ चर्य्या परीषह—चार हाथ परिमाण निरख पथ चलत दृष्टि इत उत नहीं तानें । कोमल पांव कठिन धरती पर धरत धीर वाधा नहिं माने । नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते ते स्वाद उर याद न आनें यों मुनिराज सहें चर्य्या दुःख तव दृढ़ कर्म्म कुलाचल भानैं ॥

१० आसन परीषह—गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसें जहाँ शुद्ध भू हेरें । परिमित काल रहें निश्चल तन बारबार आसन नहिं फेरें ॥ मानुषदेव अचेतन पशु कृत वैठे बिपत आन जब घेरें ठौरन तजैं भजें थिरता पद ते गुरु सदा बसो उर मेरे ॥

११ शयन परीषह—जे महान् सोनेके महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवें । ते अब अचल अङ्ग एकासन कोमल कठिन भूमिपर सोवें ॥ पाहन खण्ड कठोर कांकरी गड़त कोर कायर नहीं होवें । ऐसी सयन परीषह जीतत ते मुनि कर्म कालिमा धोवें ॥

१२ आक्रोश परीषह—जगत् जीवयावन्त चराचर सबके हित

सबको सुखदानी। तिन्हे देख दुर्वचन कहे शठ पाखण्डी ठग यह अभिमानी। मारो याहि पकड़ पापीको तपसी भेष चोर है छानी। ऐसे कुवचन वाणकी विरियां क्षमा ढाल ओढ़ै मुनि ज्ञानी॥

१३ बध बन्दन परीषह—निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं। कोई खैंच खम्भसे बांधे कोई पावकमें परजारैं॥ तहां कोप नहिं करैं कदाचित पूरब कर्म विपाक विचारैं। समरथ होय सहैं बध बन्धन ते गुरु सदा सहाय हमारे॥

१४ याचना परीषह—घोर वीर तप करत तपोधन भये क्षीण सूखी गलबांही। अस्थिचाम अवशेष रहे तनु नसा जाल झलके जिस मांही॥ औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जांय पर याचित नाहीं। दुर्द्धर अयाचिक व्रत धारे करहिं न मलिन धर्म परछांहीं॥

१५ अलाभ परीषह—एकबार भोजनकी विरियां मौन साध बस्तीमें आवैं। जो नहिं बने योग भिक्षा विधि तो महन्त मन खेदन लावें। ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतें तब तप वृद्ध भावना भावैं। यों अलाभकी कठिन परीषह सहैं साधु सोही शिव पावैं॥

१६ रोग परीषह—वात पित्त कफ श्रोणित चारों ये जब घटें बढ़े तनु माहीं। रोग संयोग शोक तब उपजत जगत् जीव कायर हो जाहीं॥ एसी व्याधि वेदना दारुण सहैं सूर उपचार न चाहीं। आत्मलीन विरक्त देहसे जैन यती निज नेम निवाहीं॥

१७ तृण स्पर्श परिषह—सूखे तृण और तीक्ष्ण कांटे कठिन कांकरी पांय विदारैं। रज उड़ आन पड़े लोचनमें तीर फांस तनु पीर विथारैं॥ तापर पर सहाय नहीं वांछत अपने करसों काढ़

न डारें । यों तृणस्पर्श परीषह विजयी ते गुरु भव भव शरण हमारे ॥

१८ मल परीषह—यावज्जीव जल न्हौन तजो तिन नग्न रूप बन थान खड़े हैं । चले पसेव धूपकी बिरियां उड़त धूल सब अङ्ग भरे हैं ॥ मलिन देहको देख महा मुनि मलिन भाव उर नाहिं करे हैं । यों मल जनित परीषह जीतें तिन्हैं पाय हम सीस धरे हैं ॥

१९ सत्कार तिरस्कार परीषह—जे महान विद्यानिधिविजयी चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं । तिनकी विनय वचन सों अथवा उठ प्रणाम जन नाहिं करे हैं ॥ तौ मुनि तहां खेद नहिं मानें उर मलीनता भाव हरे हैं । ऐसे परम साधुके अहनिशि हाथ जोड़ हम पांय परे हैं ॥

२० प्रज्ञा परीषह—तर्क छन्द व्याकरण कलानिधि आगम अलङ्कार पढ़ जानें । जाकी सुमति देख परवादी विलखे होंय लाज उर आनैं ॥ जैसे सुनत नाद केहरिको बन गयन्द भाजत भय मानैं । ऐसी महाबुद्धिके भाजन ये मुनीश मद रञ्च न ठाने ॥

२१ अज्ञान परिषह—सावधान वर्तें निशि वासर संयम शूर परम वैरागी । पालत गुप्ति गये दीरघ दिन सकल सङ्ग ममतापर त्यागी ॥ अवधिज्ञान अथवा मनपर्य्यय केवल ऋद्धि न आजहूं जागी ! यों विकल्प नहिं करें तपोधन सो अज्ञान विजयी बड़ भागी ॥

२२ अदर्शन परीषह—मैं चिरकाल घोर तप कीनो अजहुं ऋद्धि अतिशय नहिं जागे । तप बल सिद्ध होय सब सुनियत सो कछु बात झूंठसी लागे ॥ यों कदापि चितमें नहिं चिन्तत समकित शुद्ध शान्तिरस पागे । सोई साधु अदर्शन विजयीताके दर्शनसे अघ भागे ।

ताल महा जल बरसे। बिन परसे श्रीभगवन्त मेरा जी तरसे। मैं तज दई तीज सलौन पलट गई पौन मेरा है कौन मुझे जग तरना। निर्मम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥

भादों मास (झड़ी)

सखि भादों भरे तलाब मेरे चितचाव करूंगी उछाव से सोलहकारण। करूं दसलक्षण के व्रत से पाप निवारण। करूं रोट तीज उपवास पञ्चमी अकास अष्टमी खास निशल्य मनाऊं। तपकर सुगन्ध दशमी को कर्म जलाऊं॥

(झर्बटे)—सखि दुद्धर रसकी बारा। तजिहार चार परकारा। करूं उग्र उग्र तप सारा। ज्यों होय मेरा निस्तारा।

(झड़ी)—मैं रत्नत्रय व्रत धरूं चतुर्दशी करूं जगत् से तिरूं करूं पखवाड़ा। मैं सब से छिमाउं दोष तजूं सब राड़ा। मैं सातों तत्व विचार कि गाऊं मल्हार तजा संसार तौ फिर क्या करना। निर्मम नेम बिन हमें जगत् क्या करना॥

आसोज मास (झड़ी)

सखि आगया मास कुवार लो भूषण तार मुझे गिरनार का दे दो आज्ञा। मेरे पाणिपात्र आहारकी है परतिज्ञा। लो तार ये चूड़ामणी रतनकी कणी सुनों सब जनी खोल दो बैनी। मुझको अवश्य परभातहि दीक्षा लैनी॥

(झबर्टें)—मेरे हेतु कमण्डल लावो। इक पीछी नई मंगावो मेरा मत ना जी भरमावो। मम सूते कर्म जगावो॥

(झड़ी)—है जगमें असाता कर्म बड़ा बेशर्म मोहके भरमसे धर्म न सूझे। इसके वश अपना हित कल्याण न बूझे। जहां मृग

तृष्णाकी धूर वहां पानी दूर भटकना भूर कहां जल झरना ।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ।

कार्तिक मास (झड़ी)

सखि कार्तिक काल अनन्त श्रीअरहन्तकी सन्त महन्तने आज्ञा पाली । धर योग यत्न भव भोगकी तृष्णा टाली । सजे चौदह गुण अस्थान स्वपर पहचान तजे रु मकान महल दिवाली । लगा उन्हें मिष्ट जिन धर्म अमावस काली ॥

(झर्वटें)—उन केवल ज्ञान उपाया । जगका अन्धेर मिटाया । जिसमें सब विश्व समाया । तन धन सब अथिर बताया ॥

(झड़ी)—है अथिर जगत सम्बन्ध अरी मतिमन्द जगत्‌का अन्ध है धुन्ध पसारा । मेरे प्रीतमने सत जानके जगत् बिसारा । मैं उनके चरणकी चेरी तू आज्ञा दे मा मेरी । है मुझे एक दिन मरना । निर्नेम नेम० ॥

अगहन मास (झड़ी)

सखि अगहन ऐसी घड़ी उदय में पड़ी मैं रह गई खड़ी दरस नहिं पाये । मैंने सुकृत के दिन विरथा योंही गँवाये ।

नहीं मिले हमारे पिया न जप तप किया न संयम लिया। अटक रही जगमें । पड़ी काल अनादिसे पापकी बेड़ी पगमें ॥

(झर्वटें)—मत भरियो मांग हमारी । मेरे शीलको लागे गारी । मत डारो अञ्जन प्यारी । मैं योगन तुम संसारी ॥

(झड़ी)—हुये कन्त हमारे जती मैं उनकी सती पलट गई रती तो धर्म नहिं खण्डू । मैं अपने पिताके बंशको कैसे भंडूं । मैं मण्डा शील सिङ्गार अरी नथ तार गये भर्त्तारके संग आभरना निर्नेम नेम बिन० ॥

पौष मास (झड़ी)

सखि लगा महीना पोह ये माया मोह जगतसे द्रोह रु प्रीत करावै । हरै ज्ञानावरणी ज्ञान अदर्शन छावै । पर द्रव्यसे ममता हरे तो पूरी परै जु सम्बर करै तो अन्तर टूटै । अस ऊंच नीच कुल नामकी संज्ञा छूटै ॥

(झर्वटे)—क्यों ओछी उमर धरावै । क्यो सम्पतिको बिल गावै । क्यों पराधीन दुःख पावै । जो संयममें चित लावै ॥

(झड़ी)—सखि क्यों कहलावे दीन क्यों हो छवि छीन क्यों विद्याहीन मलीन कहावै । क्यों नारि नपुंसक जन्मे कर्म नचावै । वे तजैं शील श्रृङ्गार रुलै संसार जिने दरकार नरकमें पड़ना। निर्न०

माघ मास (झड़ी)

सखि आगया माह बसन्त हमारे कन्त भये अरहन्त वो केवल-ज्ञानी । उन महिमा शील कुशीलकी ऐसे बखानी । दिये सेठ सुदर्शन सूल भई मखतूल वहां बरसे फूल हुई जयबाणी वे मुक्ति गये अरु भई कलङ्कित राणी ॥

(झर्वटे)—कीचकने मन ललचाया । द्रुपदीपर भाव धराया। उसे भीमने मार गिराया । उन किया जैसा फल पाया ॥

(झड़ी)—फिर गह्या दुर्योधन चीर हुई दिलगीर जुड़ गई भीर लाज अति आवे । गये पाण्डु जुयेमें हार न पार बसावै । भये परगट शासन बीर हरी सब पीर बन्धाई धीर पकर लिये चरना । निर्नम नेम बिन० ॥

फागुन मास (झड़ी)

सखि आया फाग बड़ भाग तो होरी त्याग अठांही लाग कै

मैनासुन्दर । हरा श्रीपालका कुष्ट कठोर उदम्बर । दिया धवल सेठने डार उदधिकी धार तो होगये पार वे उस ही पलमें । अरु आपरणी गुणमाल न डूबे जलमें ॥

(झर्वटें)—मिली रैन मंजूषा प्यारी । जिन ध्वजा शील की धारी । परी सेठ पै मार करारी । गया नर्कमें पापाचारी ॥

(झड़ी)—तुम लखो द्रोपदी सती दोष नहिं रती कहैं दुर्मती पद्मके बन्धन । हुआ धातकी खण्ड जरूर शील इस खण्डन । उन फूटे घड़े मंझार दिया जल डाल तो वे आधार थमा जल झरना । निर्नेम नेम बिन० ॥

चैत्र मास (झड़ी)

सखि चेत्रमें चिन्ता करे न कारज सरे शीलसे टरे कर्मकी रेखा । मैंने शीलसे भीलको होता जगत् गुरु देखा । सखी शीलमें सुलसां तिरी सुतारा फिरी खलासी करी श्रीरघुनन्दन । अरु मिली शील परताप पवनसे अञ्जन ॥

(झर्वटें)—रावणने कुमत उपाई । फिर गया विभीषण भाई । छिनमें जा लंक गमाई । कुछ भी नहिं पार-बसाई ॥

(झड़ी)—सीता सती अग्निमें पड़ी तो उस ही घड़ी वह शीतल पड़ी चढ़ी जल धारा । खिल गये कमल भये गगनमें जय जय कारा । पद पूजे इन्द्र धरेन्द्र भई शीतेन्द्र श्रीजैनेन्द्रने ऐसा बरना । निर्नेम नेम बिन० ॥

बैशाख मास (झड़ी)

सखी आई बैशाखी भेष लई में देख ये ऊरध रेख पड़ी मेरे करमें । मेरा हुआ जन्म यु हीं उग्रसेनके घरमें । नहिं लिखा करम

में भोग पडा है जोग करो मत सोग जाऊं गिरनारी। है मात पिता अरु भ्रातसे क्षमा हमारी॥

(झर्वटें)—मैं पुण्य प्रताप तुम्हारे। घर भोगे भोग अपारे। जो विधिके अङ्क हमारे। नहिं टरें किसीके टारे॥

(झड़ी)—मेरी सखो सहेली बीर न हो दिलगीर धरो चित धीर मैं क्षमा कराउं। मैं कुलको तुम्हारे कबहुं न दाग लगाऊं। वह ले आज्ञा उठ खडी थी मङ्गल घड़ी बनमें जा पड़ी सुगुरुके चरना। निर्नेम नेम बिन०॥

जेठ मास (झड़ी)

अजी पड़े जेठकी धूप खड़े सब भूप वह कन्या रूप सती बड़ भागन। कर सिद्धनको प्रणाम किया जग त्यागन। अजि त्यागे सब संसार चूड़ियां तार कमण्डलु धार के लई पिछोठी। अरु पहर के साड़ी स्वेत उपाटी चोटी॥

(झर्वटें)—उन महाउग्र तप कीना। फिर अच्युतेन्द्र पद लीना। है धन्य उन्हींका जीना। नहिं विषयनमें चित दीना॥

(झड़ी)—अजी त्रिया वेद मिट गया पाप कट गया पुण्यचढ़ गया बढ़ा पुरुषारथ। करे धर्म अरथ फल भोग रुचे परमारथ, वो स्वर्ग सम्पदा भुक्ति जायगी मुक्ति जैनको उक्तिमें निश्चय धरना। निर्नेम नेम०॥

जो पढ़े इसे नर नारि बढ़े परिवार सब संसारमें महिमा पावैं। सुन सतियन शील कथान विघ्न मिट आवैं। नहिं रहैं सुहागिन दुखी होय सब सुखी मिटे वेरुपी करें पति आदर। वे होंय जगत् में महा सतियोंकी चादर॥

या संसार महावन भीतर भ्रमत छोर न आवे। जन्मन मरन जरायों दाहे जीव महा दुःख पावे ॥३॥ कबहूं कि जाय नर्क पद भुंजे छेदन भेदन भारी। कबहूं कि पशु पर्याय धरे तहां बध बन्धन भय कारी ॥ सुरगतिमें परि सम्मति देखे राग उदय दुख होई। मानुष योनि अनेक विपति मय सर्व सुखी नहीं कोई ॥ ४ ॥ कोई इष्ट वियोगी बिलखे कोई अनिष्ट संयोगी। कोई दीन दरिद्री दीखे कोई तनका रोगी ॥ किस ही घर कलिहारी नारी के बैरी सम भाई। किस हीके दुख बाहर दीखे किसही उर दुचिदाई ॥ ५ ॥ कोई पुत्र बिना नित झूरे होय मरे तब रोवे। खोटी सन्ततिसे दुख उपजे क्यों प्राणी सुख सोवै ॥ पुण्य उदय जिनके तिनको भी नाहिं सदा सुख साता। यह जग बास यथारथ दीखे सबही हैं दुःख दाता ॥६॥ जो संसार विषें सुख होते तीर्थंकर क्यों त्यागे। काहेको शिव साधन करते संयमसे अनुरागे। देह अपावन अथिर घिनावनी इसमें सार न कोई। सागरके जलसे शुचि कीजै तोभी शुद्धि न होई ॥ ७ ॥ सप्त कुधातु भरी मलमूत्र चर्म लपेटी सोहै। अन्तर देखत या सम जगमें और अपावनको है ॥ नव मल द्वार श्रवैं निश वासर नाम लिये घिन आवे। व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां कौन सुधी सुख पावे ॥ ८ ॥ पोषत तो दुख दोष करे अति सोषत सुख उपजावे। दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावे ॥ राचन योग्य स्वरूप न याको बिरचन योग्य नहीं है। यह तन पाय महातप कीजै इसमें सार यही है ॥ ९ ॥ भोग बुरे भवरोग बढ़ावे बैरी हैं जग जीके। वे रस होंय विपाक समय अति सेवत लागे नीके ॥ वज्र अग्नि विषसे विषधरसे हैं अधिक

दुखदाई । धर्म रत्नको चोर प्रबल अति दुर्गति पन्थ सहाई ॥१०॥ मोह उदय सह जीव अज्ञानी भोग भले कर जाने । ज्यों कोई जन खाय धतूरा सब सो सब कञ्चन माने ॥ ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर मन वांछित जन पावे । तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके लहर लोभ विष लावे॥११॥मैं चक्री पद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे ॥ तो भी तनक भये ना पूरण भोग मनोरथ मेरे । राज समाज महा अघ कारण वैर बढ़ावन हारा । वेश्या सम लक्ष्मी अति चञ्चल इसका कौन पत्यारा ॥१२॥ मोह महा रिपु बैर विचारे जग जीव सङ्कट डारे । घर कारागर बनिता बेड़ी परजन है रखवारे ॥ सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप ये जियको हितकारी । ये ही सार असार और सब यह चक्री जिय धारी ॥१३॥ छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि और छोड़े सङ्ग साथी । कोड़ी अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी ॥ इत्यादिक सम्पति बहु तेरी जीर्ण त्रणवत त्यागी । नीति विचार नियोगी सुतको राज्य दिया बड़ भागी ॥ १४ ॥ होइ निस्सल्य अनेक नृपति संग भूषण बसन उतारे । श्रीगुरु चरण धरी जिन मुद्रा पञ्च महाव्रत धारे ॥ धन्य यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम धन्य यह धैर्यधारी । ऐसी सम्पति छोड़ बसे बन तिन पद धोक हमारी ॥१५॥

दोहा—परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित्र पंथ ।
निज स्वभाव में स्थिर भये, बज्र नाभि निर्ग्रन्थ ॥

(२७) समाधिमरण ।

(कवि द्यानतराय कृत)

गौतम स्वामी बन्दो नामी मरण समाधि भला है । मैं कब

पाऊं निसदिन ध्याऊं गाऊं बचन कला है ॥ देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़ सात व्यसन नहीं जाने । त्यागि बाइस अभक्ष संयमी बारह ब्रत नित ठाने ॥१॥ चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न बिराधे । बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं छहो करम इमि साधे ॥ पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा संयम तप चहुं दानी । पर उपकारी अल्प अहारी सामायक विधि ज्ञानी ॥ २ ॥ जाप जपे तिहुं योग धरे दृग तनकी ममता टारे । अन्त समय वैराग्य सम्हारे ध्यान समाधि विचारे ॥ आग लगे अरु नाव डुबे जब धर्म विघन जब आवे । चार प्रकार अहार त्यागिके मन्त्र सु मनमें ध्यावे ॥३॥ रोग असाध्य जहाँ बहु देखे कारण और निहारे । वात बड़ी है जो बनि आवे भार भवन को डारे ॥ जो न बने तो घरमें रह करि सबसों होय निराला । मात पिता सुत त्रियको सोंपै निज परिग्रह इहि काला ॥४॥ कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन कछु दुखिया धन देई । क्षमा क्षमा सबहो सों कहिके मनकी शल्य हनेई ॥ शत्रुन सों मिलि निज कर जोरे मैं बहु करी है बुराई । तुमसे प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई ॥५॥ धन धरती जो मुख सो मांगे सो सब दे संतोषे । छहो कायके प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषे ॥ ऊंच नीच घर बैठ जगह इक कछू भोजन कछू पेंले । दूधा धारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहेले ॥ ६ ॥ छाछ त्यागिके पानी राखे पानी तजि संथारा । भूमिमांहि फिर आसन माड़े साधर्मी ढिग प्यारा ॥ जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनबानी पढ़िये । यों कहि मौन लियो सन्यासी पंच परम पद गहिये ॥७॥ चौ आराधन मनमें ध्यावे बारह भावन भावे । दश लक्षण मन धर्म विचारे रत्नत्रय मन लावे ॥ पैंतिस सोलह षट पन

जो दुइ इक बरन विचारे। काया तेरी दुखकी ढेरी ज्ञान मई तू सारे ॥ ८ ॥ अजर अमर निज गुण सो पूरे परमानन्द सुभावे। आनन्द कन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावे ॥ क्षुधा तृषादिक होइ परीषह सहै भाव सम राखे। अतीचार पांचो सब त्यागे ज्ञान सुधारस चाखे ॥९॥ हाड़ मांस सब सूखि जाय जब धरम लीन तन त्यागे। अदभुत पुण्य उपाय सुरगमें सेज उठे ज्यों जागे। तहं तैं आवे शिवपद पावे बिलसे सुख अनन्तो। द्यानत यह गति होय हमारी जैन धरम जयवन्तो ॥ १० ॥

(२८) अठारहनाते लिख्यते।

(श्रीयुत कुन्दनलाल कृत)

कोई किसीका सगा नहीं झूंठी सब नातेदारी। अठारह नाते हुए हैं एक जन्मही मैं जारी ॥ टेक ॥ मालवदेश उज्जैन शहरमें सेठ सुदत्त वसें भारी, वसन्ततलिका वेसवा जिन्होंने निज घरमें डारी। रोग सहित जब भई बेसवा सेठि अरुचि चितमें धारी, गर्भवतीको महलसे छिनमें कर दीनी उनने न्यारी ॥

शेर—निरादर हो गणिका वहां से घर अपने आई है। खड़ी दिलगीर हो सोचें पड़ी कैसी तबाही है ॥ जने लड़का और लड़की जोड़ले ऐसो भाई है। जुदे इनको करूं घरसे जभी मेरी रिहाई है ॥ सुतडारा उत्तरदिशि माहीं तनुजा दक्षिणदिशि डारी। अठारह नाते हुए हैं एक जन्मही मैं जारी ॥१॥ प्रयागबासी बनजारेकी लड़की पर जा नजर पड़ी। उठा गोदमें नाम कमला जा रक्खा बिसी घड़ी ॥ दूजे बनजारे सुभद्रकी लड़के पर जा दृष्टि पड़ी। उठा गोदमें नाम धनदेव रखा परवरिस करी ॥ ले लड़का अरु लड़की दोनों वे

अपने घर आए हैं। परवरिस पा बड़े हुये ब्याहने योग्य पाए हैं॥ बनी दुलहिन कमला दुलहा धनदेव भाई है। मिला संयोग जु र ऐसा बहिन भाई बिवाहे हैं॥ भोग भोगवें भाई बहिन मिलि विधना तेरी बलिहारी। अठारह नाते हुये हैं एक जन्महो में जारी॥ २॥ समय पाय व्योपार हेत धनदेव गया उज्जैन नगर। दैव योगसे भई निज मातासे दो चार नजर॥ अनरथ ऐसा हुआ किया विभचार जु दोनोंने मिलकर। भेद न जाना भोगने भोग लगे माता सुत जु र॥ कई दिन तक वहां धनदेवको गणिका रमाया में। रोग संयोग जुग ऐसा वरुण इक लाल जाया है। कहीं कमलाने यह सब भेद मुनिवर सेती पाया है। पालना भूलता बालक वरुण जहँ पर बताया है। पहुंची सो उज्जैन नगर जहँ रचना देखी संसारी। अठारह नाते हुये हैं एक जन्महो मै जारी॥ ३॥ हाय हाय सो करै अरे विधना तूने कीनो क्यारी। होतै ही से मुझे क्यों नहिं तूने गर्दन मारी॥ क्या कहके अब झुलाऊं इस वीरनको बता विधातारी। छै नाते हैं मेरे इस बालकसे सुन महतारी॥ प्रथम तो पुत्र है मेरा जु मुझ भरतार से उपजा। तनुज धनदेव भाईका लगा जिससे भतीजा है॥ मेरी तेरी एक है माता जगा इस रीतिसे भ्राता है। मेरे मालिकका लघु भाई लगा देवरका नाता है॥ माता मेरीका तू देवर चचा इस तरह होता है। सौतके पुत्रका तू पुत्र इस नातेसे पोता है॥ छहनातेकर विरन झुलाऊं कथा करी जाहर सारी। अठारह नाते हुए हैं एक जन्म हो मैं जारी॥४॥ गणिका पतिसे हुआ पिता जिसलघु भाई मुझ चाचा है। चचा पिता सो सगा धनदेव लगा मो दादा है॥ मेरा मालिक

हुआ धनदेव जिसने मुझे ब्याहा है। मेरी तेरी है मात एक जिससे लगता तु भाया है॥ वेश्या सौत है मैं हूं धनदेव पुत्र मेरा है। मैं गणिकासुत वधू गनिकापति यों लगा ससुरा है॥ कहे धनदेवसे नाते जताया भेद सारा है। सुना अहवाल घबराके शब्द हाहा पुकारा है॥ देखा जगका हाल हुए कैसे कैसे अखर जकारी। अठारह नाते हुए हैं एक जन्मही में जारी॥ ५॥ प्रथम पैदा किया मुझको इस नाते महतारी हैं। मेरे भाईकी स्त्री है जिस करके मुझ भावी है। पिता मुझ धनदेव है जिसकी माता तू दादी है॥ सौत भी है वह जु मेरे मालिककी प्रिय प्यारी हैं॥ सौत पुत्र वधू गणिका सो मेरी भी वधू जाहिर। मैं उसके पुत्रकी स्त्री लगी मेरी सासू सरासर। कहे नाते अठारह अंतमें इक सुगुरु सीख है। छुटा जगजालसे यहां कर्म शत्रुका बड़ा डर है। कुंदन ऐसे अनर्थ माया विधना जगमें विस्तारी। अठारह नाते हुए हैं एक जन्म ही में जारी॥ ६॥ * इति *

(२६) अठारह नाते की कथा

मालवदेश उज्जयनीविषै राजा विश्वसेन तहां सुदत्त नाम श्रेष्ठी बसे सो सोलह कोटिको धनी, सो वसन्ततिलका नाम वेश्यापर आशक्त होय ताहि अपने घरमें राखी, सो गर्भवती भई, जब रोगसहित देह भई, तब घरमें से काढ़ि दई बहुरि वसन्ततिलका दुखी हो कर अपने घर आई सो उसके गर्भतैं एक पुत्र और एक पुत्री साथही जुगल उत्पन्न होने के कारण खेद खिन्न हुई

तब क्रोधित हो कर तिन दोऊ बालकनको जुदे २ कम्बलमें लपेटि पुत्रीको तो दक्षिण द्वारपर डाली सो प्रयागनिवासी बनजारे ने लेकर अपनी स्त्रीको सौंपा कमलानाम धरा, अरु पुत्रको उत्तर द्वारपर डाला सो साकेतपुरेके एक सुभद्र बनजारेने अपनी स्त्री सुव्रताको दिया और धनदेव नाम धरा बहुरि पूर्वोपार्जित कर्मके वशतैं धनदेव और कमलाके साथ विवाह हुआ स्त्री भरतार हुए, पाछे धनदेव व्यापार करने वास्ते उज्जयनी नगरी गया तहां बसन्ततिलका वेश्यासों लुब्ध भया तब ताके संयोगतैं बसन्ततिलकाके पुत्र भया वरुण नाम धरा,उधर एक दिन कमला ने निमित्तज्ञानी मुनिसे इसकी कुशल वार्ता पूंछी सो मुनिने पूर्वभवसों लेकर वर्तमान तक सकल वृत्तान्त कहा।

इनका पूर्वभव वर्णन।

इसी उज्जयनी नगरीविषैं सोमशर्म्मा नाम ब्राह्मण ताके काश्यपी नाम स्त्री तिनकें अग्निभूत सोमभूत नामके दोय पुत्रसो दोनों कहीं तैं पढ़ कर आवैं थे, मार्गमें जिनदत्तमुनिको ताकी माता जो जिनमती नाम अर्जिकाकूं शरीर समाधान पूछंता देखा और जिनभद्रनामा मुनिकों सुभद्रानाम। अर्जिका पुत्रकी स्त्री थी सो शरीर समाधान पूछंती देखी तहां दोनों भाई ने हास्य करी कि तरुणकें तो वृद्धस्त्री और वृद्धकैं तरुणी स्त्री, विधाता ने अच्छी विपरीति रचना करी सो हांस्यके पापतैं सोमशर्म्मा तौ बसन्त-तिलका वेश्या हुई बहुरि अग्निभूत दोनो भाई मरिकरि बसन्त-तिलकाकैं पुत्र पुत्री जुगल हुये तिनने कमला अरु धनदेव नाम

पाये बहुरि काश्यपी ब्राह्मणीका जीव धनदेवके संयोग तैं वरुण नाम पुत्र भया इस प्रकार पूर्वभवका उज्जयनी नगरीविषैं सकल वृतान्त सुनने से कमला को पहिले जन्म का जातीस्मरण हुआ तब वह बसन्ततिलकाके घर गई तहां वरुण पालनेमें झूलै था सो ताको कहती भई कि हे बालक ! तेरे साथ मेरे छे नाते हैं सो सुन

१ प्रथम तो मेरा भरतार जो धनदेव ताके संयोगतैं तू पैदा भया सो मेरा भी (सौतेला) पुत्र है—२ दूजे धनदेव मेरा भाई है ताका तूं पुत्र तातैं मेरा भतीजा भी है।—३ तीजे तेरी माता बसन्ततिलका सो ही मेरी माता है तिस तैं सहोदर भी है—४ चौथे तू मेरे भरतार धनदेवका छोटा भाई तिसकारण मेरा देवर भी है—५ पांचवें धनदेव मेरी माता बसन्ततिलकाका भरतार है तातैं धनदेव मेरा पिता भया ताका तूं छोटा भाई तातैं मेरा चाचा भी है—६ छठयें मैं बसन्ततिलकाकी सौतिन तातैं धनदेव मेरा पुत्र ताका तूं पुत्र तातैं तू मेरा पोता भी है।

इस प्रकार वरुणके साथ छह नाते कहतो हती सो बसन्ततिलका तहां आई और कमलाको बोली कि तूं कौन है सो मेरे पुत्रसों इस प्रकार छे नाते सुनावै है ? तब कमला बोली तेरे साथ भी मेरे छह नाते हैं सो सुन—

१ प्रथम तो तू मेरी माता है क्योंकि धनदेवके साथ तेरे ही उदरसे युगल उपजी हूं—२ दूजे धनदेव मेरा भाई ताकी तू स्त्री तातें मेरी भौजाई भी है—तीजे तू मेरी माता ताका भर्तार धनदेव मेरा पिता भया ताकी तू माता तातैं मेरी दादी भी है—४ चौथे मेरा भरतार धनदेव ताको तू स्त्री तातें मेरी सौतिन

भी है—५ पांचवें धनदेव तेरा पुत्र सो मेरा भी पुत्र ताको तू स्त्री तातैं मेरी पुत्रबधू भी है—६ छट्ठें मैं धनदेवकी स्त्री तू धनदेवकी माता सो मेरी सासू भी है।—इस प्रकार वेश्या छै नाते सुनकर चित्तमें विचारने लगी त्यो ही तहां धनदेव आया ताकों देखि कमला बोली कि तुम्हारे साथ भी मेरे छह नाते हैं सो सुनो—१ प्रथम तो तूं और मैं इसी वेश्याके उदर सों जुगल उपजे सो मेरा भाई है—२ दूजे तेरा मेरा विवाह भया सो मेरा पति भी है—२ तीजे बसन्ततिलका मेरी माता ताका तू भरतार तातैं मेरा पिता भी है—४ चौथे बरुण तेरा छोटा भाई सो मेरा काका भया ताका तू पिता सो काकाका पिता सो मेरा दादा भी भया—५ पांचव मैं बसन्ततिलकाकी सौति अरु तू मेरा सौतिनि पुत्र तातैं तू मेरा भी पुत्र है—६ छट्टे तू मेरा भरतार तातैं तेरी माता बसन्ततिलका मेरी सासु भई और सासू के तुम भरतार तातैं मेरे ससुर भी भये।

इस प्रकार एक ही जन्ममें इन प्राणियोंके परस्पर अठारह नाते भये ताको उदाहरण (दृष्टांत) कहा कि इस भांति इस संसार की विचित्र विडंबना है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

इस प्रकार अठारह नातेका व्योरा समाप्त।

(३०) चौबीस तीर्थकरोंके चिन्ह।

१ ऋषभनाथके बैल २ अजित नाथके हाथी ३ संभवनाथके घोड़ा ४ अभिनन्दन नाथके बन्दर ५ सुमति नाथके चकवा ६ पद्म प्रभके कमल ७ सुपार्श्वनाथके सांथिया ८ चन्द्रप्रभके चन्द्रमा ९ पुष्पदन्तके नाकू १० शीतलनाथके कल्पवृक्ष ११ श्रेयांसनाथ

के गेंडा १२ वासुपूज्यके भैंसा १३ विमलनाथके सुअर १४ अनंत नाथके सेही १५ धर्मनाथके बज्रदण्ड १६ शान्तिनाथके हिरण १७ कुंथनाथके बकरा १८ अरहनाथके मच्छी १९ मल्लिनाथके कलश २० मुनिसुव्रतनाथके कछवा २१ नमिनाथके कमल २२ नेमिनाथके शंख २३ पार्श्वनाथके सर्प २४ महावीरके सिंह।

(३१) बारह चक्रवर्त्ती।

भरतचक्री, २ सगरचक्री, ३ मघवाचक्री ४ सनत्कुमारचक्री ५ शान्तिनाथचक्री (तीर्थंकर), ६ कुन्थनाथचक्री, (तीर्थंकर),७ अरनाथकी (तीर्थंकर), ८ सभूमचक्री; ९ पदमचक्री वा महापद्म १० हरिषेणचक्री, ११ जयचक्री, १२ ब्रह्मदत्तचक्री।

(३२) नव नारायण।

१ त्रिपृष्ट, २ द्विपृष्ट, ३ स्वयंभू, ४ पुरूषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुण्डरीक, ७ दत्त ८ लक्ष्मण, ९ कृष्ण।

(३३) नव प्रतिनारायण।

१ अश्वग्रीव, २ तारक, ३ मेरक. ४ मधु (मधुकैटभ) ५ निशुंभ, ६ बली, ७ प्रह्लाद, ८ रावण, ९ जरासंघ।

(३४) बलभद्र

१ अचल, २ विजय, ३ भद्र, ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन, ६ आनंद, ७ नंदन (नंद), ८ पद्म (रामचन्द्र), ९ राम (बलभद्र)।

(३५) नव नारद ।

१ भीम, २ महाभीम, ३ रुद्र, ४ महारुद्र, ५ काल, ६ महाकाल ७ दुर्मुख, ८ नरकमुख, ९ अधोमुख ।

[३६] ग्यारह रुद्र ।

१ भीमबली २ जितशत्रु ३ रुद्र ४ विश्वानल ५ सुप्रतिष्ठ ६ अचल ७ पुण्डरीक ८ अजितधर, ९ जितनाभि, १० पींठ, ११ सात्यकी

(३७) चौबीस कामदेव ।

१ बाहुबली, २ अमिततेज, ३ श्रीधर ४ दशभद्र, ५ प्रसेनजिन्, ६ चंद्रवर्ण, ७ अग्निमुक्ति, ८ सनत्कुमार (चक्रवर्ती) ९ बत्सराज, १० कनकप्रभ, ११ सेघवर्ण, १२ शांतिनाथ (तीर्थंकर), १३ कुंथुनाथ (तीर्थंकर), १५ विजयराज, १६ श्रीचंद्र, १७ राजा नल, १८ हनुमान्, १९ बलराजा, २० वसुदेव, २१ प्रद्युम्न, २२ नागकुमार, २३ श्रीपाल, २४ जंबूस्वामी ।

[३८] चौदह कुलकर

१ प्रतिश्रुति, २ सन्मति, ३ क्षेमंकर, ४ क्षेमंधर, ५ सीमंकर, ६ सीमंधर, ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान् ९ यशस्वी, १० अभिचंद्र, ११ चंद्राभ, १२ मरुदेव, १३ प्रसेनजित् १४ नाभिराजा ।

(३९) बारह प्रसिद्ध पुरुष

१ नाभि, २ श्रेयांस, ३ बाहुबली, ४ भरत, ५ रामचन्द्र, ६

नोट—तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण बलभद्र यह त्रेसठ शलाका पुरुष कहाते हैं तथा नारद, रुद्र, कामदेव, कुलकर, और तीर्थंकरोंके मातापिता १६९ पुण्य पुरुष कहाते हैं ।

हनुमान्, ७ सीता, ८ रावण, ९ कृष्ण, १० महादेव, ११ भीम, १२ पार्श्वनाथ।

(४०) विदेहक्षेत्रके २० विद्यमान तीर्थंकर।

१ सीमन्धर, २ युगमंधर, ३ बाहु, ४ सुबाहु, ५ सुजात, ६ स्वयंप्रभ, ७ वृषभानन, ८ अनन्तवीर्य, ९ सूरप्रभ, १० विशालकीर्त्ति, ११ वज्रधर, १२ चंद्रानन, १३ चन्द्रबाहु, १४ भुजंगम, १५ ईश्वर, १६ नेमप्रभ (नमि), १७ वीरसेन, १८ महाभद्र, १९ देवयश, २० अजितवीर्य।

(४१) भूतकालकी चौबीसी

१ श्रीनिर्वाण, २ सागर, ३ महासिंधु, ४ विमलप्रभ, ५ श्रीधर ६ सुदत्त, ७ अमलप्रभ, ८ उद्धर, ९ अंगिर, १० सन्मति, ११ सिंधुनाथ, १२ कुसुमांजलि, १३ शिवगण, १४ उत्साह, १५ ज्ञानेश्वर, १६ परमेश्वर, १७ विमलेश्वर १८ यशोधर, १९ कृष्णमति, २० ज्ञानमति, २१ शुद्धमति, २२ श्रीभद्र, २३ अतिक्रांत, २४ शांति।

४२ भविष्यकी चौबीसी।

१ श्रीमहापद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयंप्रभ, ५ सर्वात्मभू, ६ श्रीदेव, ७ कुलपुत्रदेव, ८ उदकदेव, ९ प्रोष्ठिलदेव, १० जयकीर्ति, ११ मुनिसुव्रत, १२ अरह (अमम) १३ निष्पाप, १४ निःकषाय, १५ विपुल, १६ निर्मल, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ स्वयंभू, २० अनिवृत्त, २१ जयनाथ, २२ श्रीविमल, २३ देवपाल, २४ अनन्तवीर्य।

(४३) गुणस्थान

१ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ अविरत सम्यक्त्व, ५ देशव्रत, ६ प्रमत्त, ७ अप्रमत्त, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसांपराय, ११ उपशांतकषाय वा उपशांतमोह, १२ क्षीण कषाय वा क्षीणमोह, १३ संयोगकेवली, १४ अयोगकेवली।

(४४) सोलहकारण भावना

१ दर्शनविशुद्धि, २ विनयसंपन्नता, ३ शीलव्रतेष्वनतिचार, ४ अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, ५ संवेग, ६ शक्तिस्त्याग, ७ तप ८ साधु-समाधि, ९ वैय्यावृत्य, १० अर्हद्भक्ति, ११ आचार्यभक्ति, १२ बहुश्रुतभक्ति, १३ प्रवचनभक्ति, १४ आवश्यकपरिहाणी, १५ मा॰- प्रभावना, १६ प्रवचनवात्सल्य।

(४५) श्रावकोंके उत्तरगुण।

१ लज्जावंत, २ दयावंत, ३ प्रसन्नता, ४ प्रतीतिवन्त, ५ पर-दोषाच्छादन, ६ परोपकारी, ७ सौम्यदृष्टि, ८ गुणग्राही, ९ मिष्ट-वादी, १० दीर्घविचारी, ११ दानवंता १२ शीलवंत, १३ कृतज्ञ, १४ तत्वज्ञ, १५ धर्मज्ञ, १६ मिथ्यात्व रहित, १७ संतोषवंत १८ स्याद्वाद भाषी, १९ अभक्ष्यत्यागी, २० षटकर्मप्रवीण २१।

(४६) श्रावककी ५३ क्रिया।

८ मूलगुण, १२ व्रत, १२ तप, १ समताभाव, ११ प्रतिमा, ४ दान, ३ रत्नत्रय, जल छाणन क्रिया, १ रात्रिभोजन त्याग और दिनमें अन्नादिक भोजन शोधकर खाना अर्थात् छानबीन कर देख भालकर खाना।

श्रावकके ८ मूलगुण—५ उदंबर । ३ मकार ।

१२ व्रत—५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत ।

५ अणुव्रत—१ अहिंसा अणुव्रत, २ सत्याणुव्रत, ३ परस्त्री त्याग अणुव्रत, ४ (अचौर्य) चोरी त्याग अणुव्रत, ५ परिग्रहप्रमाण अणुव्रत ।

३ गुणव्रत—१ दिग्व्रत २ देशव्रत, ३ अनर्थदंडत्याग ।

४ शिक्षाव्रत—१ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ अतिथि-संविभाग, भोगोपभोगपरिमाण ।

१२ तप

आचार्यके ३६ गुणोंमें लिखे हैं । इनके भी वही नाम । श्रावकोंके अणुव्रत कम परीषहवाले ।

११ प्रतिमा—दर्शनप्रतिमा, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रहत्याग, अनुमति, त्याग, उद्दिष्ट त्याग ।

चारदान-आहारदान, औषधदान, शास्त्रदान, अभयदान

३-रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ।

दातारके २१ गुण-९ नवधाभक्ति, ७ गुण ५ आभूषण । यह २१ गुण दातारके हैं अर्थात् दान देनेवाले दातामें यह २१ गुण होने चाहिये ।

नवधाभक्ति-पात्रको देख बुलाना, उच्चासनपर बैठाना,

चरण धोना, चरणोदक मस्तकपर चढ़ाना, पूजा करना, मन शुद्ध रखना, विनयरूप बोलना, शरीर शुद्ध रखना शुद्ध आहार देना।

दातारके सात गुण—श्रद्धावान्, शक्तिवान्, अलोभी, दयावान्, भक्तिवान्, क्षमावान् और विवेकवान्।

दाताके पांच भूषण—आनन्दपूर्वक देवे, आदरपूर्वक देवे प्रिय बचन कहकर देवे, निर्मल भाव रखे, जन्म सफल माने।

दाताके पांच दूषण—बिलम्बसे देवे, विमुख होकर देवे, दुर्वचन कहकर देवे, निरादर करके देवे, देकर पछतावे।

(४७) ग्यारह प्रतिमाओंका सामान्य स्वरूप।

प्रणम पंच परमेष्टि पद, जिन आगम अनुसार; श्रावकप्रतिमा एक दश, कहु' भविजन हितकार॥ १॥ सवैया ३१॥ श्रद्धाकर व्रत पाले सामयिक दोष टालै, पौसौ मांठ सचित कौं त्यागैंलों घटायकैं रात्रिभुक्त परिहरै, ब्रह्मचर्य नित धरै, आरम्भको त्याग करै मन बच कायकैं। परिग्रह काज टारे अघ अनुमत छारैं, स्वनिमित कृत टारैं असत बनायकैं। सब एकादश येह प्रतिमा जु शर्म्म गेह, धारैं देशव्रती उर हरष बढ़ायकैं।

दर्शन प्रतिमा

अष्ट मूलगुण संग्रह करै, विशुन अभक्ष्य सबे परिहरे॥
युत अष्टांग शुद्ध सम्यक्त, धरहिं प्रतिज्ञा दरशन रक्त॥ १॥

व्रत प्रतिमा स्वरूप

अणुव्रतपन अतिचार विहींन, धारह जो पुन गुणव्रत तीन,
शिक्षाव्रत संजुत जो सोय; व्रत प्रतिमा धर श्रावक होय॥२॥

सामायक प्रतिमा स्वरूप-गीतका छंद-सब जियन में समभाव धर शुभ भावना संयममहीं, दुरध्यान आरत रौद्र तज कर त्रिविध काल प्रमाणहीं। परमेष्ठि पन जिन वचन निज वृष बिम्ब जिन जिनग्रह तनी, बंदन त्रिकाल करहु सुजानहु भव्य सामायक धनी ॥ ३ ॥

प्रोषध प्रतिमा स्वरूप- (पद्धरी छंद—

वर मध्यम जघन्य त्रिविधं धरेय, प्रोषध विधि युत निजबल प्रमेय, प्रति मास चार पवो मझार, जानहु सो प्रोषध नियम धार ॥४॥

सचित्तत्याग प्रतिमा स्वरूप-चौपाई—

जो परि हरै हरीं सब चीज, पत्र प्रवाल-कंद फल-बीज,
अरु अप्रासुक जल भी सोय, सचित्त त्याग प्रतिमा धर होय

रात्रिभुक्तत्याग प्रतिमा स्वरूप-अडिल्ल छन्द—

मन बच तन कृत कारित अनुमोदै सही, नवविध मैथुन दिवस माहिं जो बर्जे ही। अरु चतुविध आहार निशा माहो तजै. रात्रिभुक्ति परित्याग प्रतिमा सो सजै ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्यप्रतिमा स्वरूप—चौपाई—

पूर्व उक्त मैथुन नव भेद, सब प्रकार तजै निरखेद,
नारि कथादिक भी परिहरे ब्रह्मचर्य प्रतिमा सो धरे ॥ ७ ॥

आरंभ त्याग प्रतिमा स्वरूप—चौपाई—

जो कछु अल्प बहुत अघ काज, ग्रह संबंधी सो सब त्याज,
निरारम्भ व्है वृष रत रहै, सो जिय अष्टमो प्रतिमा वहै ॥८॥

परिग्रहत्याग प्रतिमा स्वरूप—चौपाई

वस्त्र मात्र रख परिग्रह अन्य, त्याग करै जो व्रतसंपन्न,
तापै पुनः मूर्छा परहरै, नवमी प्रतिमा सो भवि धरै ॥९॥

अनुमतत्याग प्रतिमा स्वरूप—चौपाई

जो प्रमाण अघमय उपदेश, देय नहीं परको लवलेस, ॥
अरु तसु अनुमोदन भी तजै, सोही दशमी प्रतिमा सजै ॥१०॥

उद्दिष्टत्याग प्रतिमास्वरूप—चौपाई—

ग्यारम थान भेद हैं दोय, इक क्षुल्लक इक ऐलक सोय,
खण्ड वस्त्रधर प्रथम सुजान, युत कोपीनहि दुतिय प्रछान॥११॥
ए ग्रह त्याग मुनिन ढिंग रहैं, वा मठ, मन्दिरमें निवसहै,
उत्तर उदण्ड उचित आहार, करहिं शुद्ध अंत्रायन बार ॥
दोहा—इम सब प्रतिमा एकदश दौल देशव्रत यान,
ग्रहै अनुक्रम मूल सह, पालै भवि सुखदान ॥

(४८) श्रावकोंके १७ नियम।

१ भोजन, २ अचित वस्तु, ३ गृह, ४ संग्राम, ५ दिशागमन, ६ औषधिविलेपन, ७ तांबूल, ८ पुष्पसुगन्ध, ९ नाच, १० गीतश्रवण ११ स्नान, १२ ब्रह्मचर्य, १३ आभूषण, १४ वस्त्र १५ शय्या, १६ औषध खानी, १७ घोड़ा बैलादिककी सवारी।*

---

* नोट—प्रतिदिन जिन २ चीजोंकी जरूरत हो उसका प्रमाण करे कि आज यह करूंगा; शेषका प्रतिदिन त्याग करे।

(४६) सात व्यसनका त्याग।

जूवा, मांस, मदिरा, गणिका, शिकार चोरी परस्त्री।

(५०) बाईस अभक्ष्यका त्याग।

पांच उदम्बर—१ उदम्बर (गूलर), २ कटूम्बर, ३ बड़फल, ४ पीपलफल, ५ पाकर फल (पिलखन फल)।

तीन मकार—१ मांस, २ मधु, ३ मदिरा।

शेष १४ अभक्ष्य—ओला, विदल, रात्रि भोजन, बहुबीजा, बैंगन, कन्दमूल, बगैर जाना फल, अचार, बिष, माटी, बरफ, तुच्छ फल, चलित रस, माखन।

(५१) श्रावकके षट कर्म।

देव पूजा, गुरुसेवा, स्वध्याय, संयम, तप, दान यह छह कर्म प्रत्येक श्रावकको करना चाहिये।

(५२) दशलक्षण धर्म।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग आकिंचन, ब्रह्मचर्य।

(५३) लघु अभिषेक पाठ।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्यजगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु जैनेंद्रयज्ञविधिरेष महाभ्यधायि॥

(इस श्लोकको पढ़कर जिनचरणोंमें पुष्पांजलि छोड़नी चाहिये)

श्रीमन्मन्दरसुन्दरे शुचिजलैर्धौते सदर्भाक्षतैः
पीठेमुक्तिकरंनिधाय, रचितं त्वपादपद्मस्रजः
इन्द्रोऽहंनिजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे।

मुद्राकङ्कणशेखरान्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥

(इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको यज्ञोपवीत तथा नाना प्रकारके सुन्दर आभूषण धारण करना चाहिये।)

सौगन्धसंगतमधुव्रतझंकृतेन, सौवर्ण्यमानमिव गंधमनिंद्यमादौ। आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवन्द्य पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानां

इसे पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको अङ्गमें चन्दनके नवतिलक करना चाहिये।

ये सन्ति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः। संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥

(इसको पढ़कर अभिषेकके लिये भूमिका प्रक्षालन करे)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः, प्रक्षालितं सुखरैर्यदनेकवारम्। अत्युद्यमुद्यतमहं जिनपादपीठं प्रक्षालयामि भवसंभव तापहारि ॥

(जिस सिंहासन पर विराजमान करके अभिषेक करना हो उसका प्रक्षालन करे

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबीजवर्णं श्रीमङ्गलीकवरसर्वजनस्य नित्यं। श्रीमत्स्वयं क्षयतयस्य विनाशविघ्नं श्रीकारवर्णं लिखितं जिनभद्रपीठे।

(इस श्लोकको पढ़कर पीठपर श्रीकार लिखना चाहिये।)

इन्द्राग्निदंडधरनैर्ऋतपाशपाणि वायूत्तरेशशशिमौलिफणीन्द्र चन्द्राः। आगत्य यूयमिहसानुचराः सचिन्हाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ॥

(नीचे लिखे मंत्रोंको पढ़कर क्रमसे दश दिकपालोंके लिये अर्घ चढ़ाओ)

१ ॐ आँ क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा।

श्रीमुनि शांतिसागरजी श्रीमुनि सूर्यसागरजी श्रीमुनि अनंतसागरजी

इह भाँति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं ।अ०।

दोहा—स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं ॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसे।
वर धूप तासु सुगन्धिताकरि सकल परिमलता हसे ॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भवज्वलनमांहीं नहिं पचूं ।अ०।

दोहा—अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं ॥

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फलगुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, परम अम्रतरस सचूं ॥अ०॥

दोहा—जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रसलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं देवाशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं ॥

जल परम उज्जवल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं ॥
इहभांति अर्घ चढ़ाय नित भवि,करत शिवपङ्क्ति मचूं ।अ०

दोहा—वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं ॥

अथ जयमाला

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।

भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥ १ ॥

चऊकर्मकी त्रेसठ प्रकृति नाशि। जीते अष्टादशदोषराशि।

जे परम सगुण हैं अनँत धीर। कहवतकेछयालिस गुण गँभीर ॥२

शुभ समवशरणशोभा अपार! शत इन्द्र नमत कर शीस धार

देवाधिदेव अरहंत देव। बन्दो मनवचतन करि सु सेव ॥३॥

जिनकी धुनि है ओंकाररूप। निरक्षरमय महिमा अनूप।

दश अष्ट महा भाषा समेत। लघु भाषा सात शतक सुचेत ॥४॥

सो स्यादवादमय सप्त भङ्ग। गणधर गूंथे बारह सुअङ्ग।

रविशशि न हरै सो तम हराय। सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय।

गुरु आचारज उवझाय साधु। तन नगन रतनत्रय निधि अगाध।

संसारदेह वैराग धार। निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥

गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस। भवतारन तरन जिहाज ईस

गुरुकी महिमा वरनी न जाय। गुरु नाम जपों मन बचनकाय ॥७॥

सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।

'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भोगवै ॥८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्बपामीति स्वाहा।

(५६) बीसतीर्थंकर पूजा भाषा।

द्वीप अढ़ाई मेरु पन, अब तीर्थंकर बीस।

तिन सबकी पूजा करूं मनवच तन धरि शीस ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानबिंशतितीर्थंकरा! अत्र अवतर अतवर।

तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

इन्द्रफणींद्रनरेंद्रबन्द्य, पद निर्मलधारी। शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी।

क्षीरोदधिसम नीरसों (हो) पूजों तृषा निवार ॥
सीमन्धर जिन आदि दे, बीस विदेह मँझार ॥
श्री जिनराज हो, भव तारण तरण जिहाज ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं ॥

(इस पूजामें यदि वीस पुञ्ज करना हो तो इस प्रकार मन्त्र बोलना चाहिये।)

ॐ ह्रीं सीमन्धरयुग्मंधर-बाहु-सुबाहु-सुजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन अनन्तवीर्य्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-बज्रधर-चन्द्रानन-चन्द्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशाऽजितवीर्य्येति-विंषतिविद्यमानतीर्थंकरोभ्यो जन्ममृत्युविनाशाय जलं ॥ १ ॥

तीन लोकके जीव,पाप आताप सताये। तिनकों साता दाता,
शीतल वचन सुहाये ॥ बावन चन्दनसों जजूं (३),भ्रमनतपन
निरवार। सीमं ॥२॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं ॥

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जग नामी ॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुणसार। सीमं० ॥३॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ॥

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो।
जतिश्रावकआचार कथनको, तुम्ही बड़ेहो ॥
फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदन प्रहार। सीमं० ॥४॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो कामबाणविध्वंसनायपुष्पं ॥

कामनाग विषधाम,—नाशको गरुड़ कहे हो।

क्षुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो ॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूख विडार । सीमं० ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो क्षुधारोगविनाशनायनैवेद्यं ॥
उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भर्‌यो है ।
मोह महातम घोर, नाश परकाश कर्‌यो है ॥
पूजों दीप प्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरतार । सीमं० ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योः मोहान्धकारविनाशनायनैवेद्यं
कर्म आठ सब काठ,-भार विस्तार निहारा ।
ध्यान अगनि कर प्रगट, सरब कीनों निरवारा ॥
धूप अनूपम खेवतें (हो), दुःख जलै निरधार । सीमं० ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय, धूपंनि०॥
मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं ।
सबको छिनमें जीत, जैनके मेर खरे हैं ।
फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछित फल दातार सी०॥८॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं ॥
जल फल आठों दर्ब, अरघ कर प्रीत धरी हैं ।
गणधर इन्द्रनिहूंतै, थुति पूरी न करी हैं ।
'द्यानत' सेवक जानके (हो), जगतैं लेहु निकार । सीमं०॥९॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घंनि०

अथ जयमाला आरती ।

सोरठा-ज्ञानसुधाकर चन्द, भविकखेतहित मेघ हो ।
भ्रमतमभान अमन्द, तिर्थंकर बीसों नमों ॥ १ ॥
सीमन्धर सीमन्धर स्वामी । जुगमन्धर जुगमंधर नामी ।

(६३) सोलह कारण पूजा

अडिल्ल—सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये। हरषे इन्द्र अपार मेरूपै ले गये॥ पूजा करि निज धन्य लख्यौ बहु चावसौं। हमहू षोड़शकारण भावैं भावसौं ॥१॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोड़शकारणानि ! अत्रावतरअवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितोभव भव वषट्।

चौपाई—कंचनझारी निरमल नीर। पूजौं जिनवर गुणगंभीर।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥
दर्शविशुद्धि भावना भाय। सोलह तीर्थंकर पदपाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ १ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यो जन्ममृत्युविनाशाय जलं।

चंदन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्रीजिनवरके पाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ दर्श० ॥२॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यः चन्दनं०।

तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप,। पूजौं जिनवर तिहुं जगभूप।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ दर्शवि० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्।

फूल सुगन्ध मधुपगुंजार। पूजौं जिनवर जगदाधार।
परमगुरु हो जय जय नाथ परमगुरु हो॥ ४॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यः कामवण विध्वंसनायपुष्पं॥

सदनेवज बहुविध पकवान। पूजौं श्रीजिनवर गुणखान
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ दर्शवि० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यक्षुधारोगविनाशनायनैवेद्य

दीपकजोति तिमर छयकार। पूजूं श्रीजिन केवलधार।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ दर्शवि०॥ ६॥

ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धयादिषोड़शकाणेभ्यो मोहांधकारविनाशायदीपं॥

अगर कपूर गन्ध शुभ खेय। श्रीजिनवर आगें महकेय।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ दर्श०॥ ७॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं॥

श्रीफल आदि बहुत फलसार। पूजौं जिन बांछितदातार।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ दर्शवि० ८॥

ओं ह्रीं दर्शन विशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तायेफलं

जल फल आठों दरब चढ़ाय। 'द्यानत' वरत करों मनलाय।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥ दर्श०॥ ९॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं॥

अथ जयमाला।

दोहा—षोड़शकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास।

पाप पुण्य सब नाशकै, ज्ञान भान परकास॥ १॥

चौपाई १६ मात्रा।

दर्शविशुद्ध धरै जो कोई। ताको आवागमन न होई॥

विनय महा धारै जो प्रानी। शिवबनिताकी सखी बखानी।२।

शील सदा दिढ़ जो नर पालैं। सो औरनकी आपद टालैं॥

ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं। ताकै मोहमहातम नाहीं॥ ३॥

जो संवेगभाव विस्तारै। सुरगमुकतिपद आप निहारै॥

दान देय मन हरष विशेखै। इह भव जस परभवसुखदेखै॥४॥

जो तप तपै खपैं अभिलाषा। चूरै करमशिखर गुरु भाषा॥
साधुसमाधि सदा मन लावै। तिहुँ जगभोग भोगि शिव जावै॥५॥
निशदिन वयावृत्य करैया। सो निहचै भवनीर तिरैया॥
जो अरिहन्तभगति मन आनै। सो जन विषय कषाय न जानै॥६॥
जो आचारजभगति करै हैं। सो निर्मल आचार धरै हैं॥
बहुश्रुतवंतभगति जो करई। सो नर सम्पूरण श्रुत धरई॥८॥
प्रवचनभगति करै जो ज्ञाता। लहैं ज्ञान परमानँद दाता॥
षट्आवश्य काल जो साधै। सो ही रतनत्रय आराधै ८॥
धरमप्रभाव करैं जे ज्ञानी। तिन शिवमारग रीति पिछानी॥
बात्सलअङ्ग सदा जो ध्यावे। सो तीर्थंकर पदवी पावै॥ ९॥
दोहा—एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देवइन्द्रनरवन्धपद, 'द्यानत' शिवपद होय॥ १०॥
ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामि॥

(६४) अथ दशलक्षणधर्मपूजा।

अडिल्ल—उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं। सत्य शौच सञ्जम तप त्याग उपाव हैं॥ आकिञ्चन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं। चहुँ गतिदुखतैं काढ़ि मुकत करतार हैं॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्रावतर अवतर! संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

सोरठा—हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभ।
भवआताप निवार, दश लच्छन पूजों सदा॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामि॥ १॥

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा। भवआ० ॥
ओं ह्रीं उत्तमादिदशलक्षणधर्माय चन्दनं निर्बपामि ॥ २ ॥
अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ ॥ भवआ० ॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान निर्बपामि ॥३॥
फूल अनेक प्रकार, महकैं ऊरधलोक लों। भवआ० ॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्बपामि ॥ ४ ॥
नेवज बिबिध प्रकार, उत्तम षटरससंजुतं ॥ भवआ० ॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामि ॥
बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी ॥ भवआ० ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीप निर्बपामि ॥ ६ ॥
अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता ॥ भवआ० ॥ ७ ॥
ओ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामि ॥ ६ ॥
फलकी जाति अपार, घ्राण नयन मनमोहने ॥ भवआ० ॥ ८ ॥
ओ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥
आठों दरब संभार' 'द्यानत' अधिक उछाह सों ॥ भवआ० ॥ ९ ॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घ्यं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अंग पूजा ।

सोरठा—पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीताछन्द ।

उत्तम छिमा गहो रे भाई। इहभव जस परभव सुखदाई ॥
गाली सुनि मन खेद न आनो। गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै। घरतैं

निकारै तन विदारै, बैर जो न तहां धरै ॥ जे करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा। अति क्रोध अगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मान महाविषरूप करहि नीचगति जगत में। कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥ २ ॥ उत्तम मार्दवगुन मन माना। मान करनको कौन ठिकाना ॥ वस्यो निगोदमाहिं तैं आया। दमरी रूंकन भाग विकाया ॥ रूंकन विकाया भागवशतैं, देव इकइन्द्री भया। उत्तम मुआ चण्डाल हूआ, भूप कीड़ोंमें गया। जीतव्य जोबन धनगुमान, चहा करै जलबुदबुदा। करि बिनय बहुगुन बड़े जनकी, ज्ञानका पावै उदा ॥

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर ना बसै। सरल सुभावो होय ताके घर बहु सम्पदा ॥३॥ उत्तमआर्जव रीति बखानी। रंचक दगा बहुत दुखदानी ॥ मनमें हो सो बचन उचरिये। बचन होय सो तनसौं करिये ॥ करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निमल आरसी मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट प्रीति अँगारसी ॥ नहि लहै लछमी अधिक छलकरि, करमबंध विसेखता। भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता।

ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देहसों। शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसारमें ॥ उत्तम शौच सर्व जग जाना। लोभ पापको बाप बखाना ॥ आसाफांस महा दुखदानी। सुख पावै सन्तोषी

इहभव विभवचाह दुखदानी । परभवभोग सहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये ।
परदोष ढकिये धरम डिगतेको सुथिर कर हरखिये ।
चहुसंघको वात्सल्य कीजे, धरमकी परभावना ।
गुन आठसों गुन आठ लहिके, इहां फेर न आवना ॥२॥

ओं ह्रीं अष्टाङ्गसहितपञ्चविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

(६८) ज्ञानपूजा ।

दोहा—पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशन भान ।
मोह तपन हर चन्द्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: । अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट्

सोरठा—नीर सुगन्ध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकज्ञान विचार; आठ भेद पूजौं सदा ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जलकेसर घनसार, ताप हरै शीतल करै । सम्यकज्ञा० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अछत अनुप निहार, दारिद नाशे सुख भरै । सम्यग्ज्ञा० ॥३॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्यकज्ञा० ॥४॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्यकज्ञा० ॥५॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

दीपज्योतितमहार, घटपट परकाशे महा। सम्यक्ज्ञा० ॥६॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

धपघ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकज्ञा० ॥७॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

श्रीफल आदि विथार निहचै सुरशिवफल करै। सम्यकज्ञा० ॥८॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीमि स्वाहा० ॥८॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु। सम्यकज्ञा० ॥६॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

अथ जयमाला

दोहा—आप आप जानै नियत, ग्रंथपठन व्योहार।

संशय विभ्रम मोह विन, अष्टअङ्ग गुनकार ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीताछन्द

सम्यकज्ञान रतन मन भाया। आगम तीजा नैन बताया।

अक्षर शुद्ध अरथ पहिचानौ। अच्छर अरथ उभय संग जानौ॥

जानौं सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।

तपरीति गहि बहु मान देकैं, विनयगुन चित लाइये॥

ए आठ भेद करम उछेदक, ज्ञानदर्पन देखना।

इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पटपेखना ॥३॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।२।

(६८) चारित्र पूजा।

विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार।

तीर्थंकर जाकौं धरैं, सम्यकचारितसार ॥१॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ।ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

सोरठा—नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।

सम्यकचारित्र सार, तेरहविधि पूजौं सदा ॥१॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामि०।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै। सम्यकचा० ॥२॥ ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा। अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै। सम्यकचा० ॥३॥ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा। पुहपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्यकचा०॥४॥ ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा। नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै। सम्यक ॥५॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा। सम्यकचा० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक् चारित्राय दीपं निर्वपामि०।

धूप घ्रान सुखकार, रोग विघन जड़ता हर। सम्यकचा० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफलआदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्यकचा० ॥८॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत चारु दीप धूप फल फूल चरु। सम्यकचा० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला।

आप आप थिर नियत नय, तपसंजम व्योहार।

स्वपर दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद।

सम्यकचारित रतन सँभालो। पांच पाप तजिकैं व्रत पालो।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै। नरभव सफल करहु तन छीजै॥
छीजै सदा तनको जतन यह एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नरकनिगोदमांहीं, कषायविषयनि टालिये॥
शुभ करमजोग सुघाट आया पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है॥ २॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधिसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं।

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—सम्यकदरशन ज्ञान व्रत, इन बिन मुकत न होय।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जले दव लोय॥ १॥

चौपाई १६ मात्रा।

तापै ध्यान सुथिर बन आवे। ताके करम बंध कट जावे॥
तासों शिवतिय प्रीति बढ़ावे। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥२॥
ताकों चहुंगतिके दुख नाहीं। सो न परै भवसागरमांहीं॥ जनम-जरामृतु दोष मिटावे। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावे॥३॥ सोई दश-लच्छनको साधैं। सो सोलहकारण आराधै॥ सो परमातम पद उपजावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावे॥४॥ सोई शक्रचक्र पद लेई। तीनलोकके सुख विलसेई॥ सो रागादिक भाव बहावे। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावे॥५॥ सोई लोकालोक निहारे। परमानंददशा विसतारे॥ आप तिरै औरन तिरवावे। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावे॥६॥

दोहा—एकस्वरूपप्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, द्यानतको सुखदाय॥७॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(७०) श्रीनन्दीश्वर पूजा ।

अडिल्ल—सरब परबमें बड़ो अठाई परब है। नंदीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरब है ॥ हमें सकति सो नाहिं इहां करि थापना। पूजों जिनगृह प्रतिमा है हित आपना ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपेद्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह। अत्र अवतर अवतर। संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथनीरभरा।
तिहुं धार दयी निरवार, जामन मरन जरा ॥
नंदीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनदभाव धरों ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चासज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो (इतना मंत्र प्रत्येक अष्टकके अंतमें बोलना चाहिये) जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामोति स्वाहा ॥१॥

भवतपहर शीतलवास, सो चंदननाहीं।
प्रभु यह गुन कीजे सांच, आयो तुम ठाहीं ॥नंदी०॥

ओ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे भवाताप विनाशनाय चंदनं ॥२॥

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहैं ॥
सब जीते अक्षसमाज; तुम सम अरुको हैं ॥ नंदी० ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् ॥३॥

तुम कामविनाशक देव, ध्याऊं फूलनसों।
लहिं शील लच्छमी एव, छूटें सूलनसों ॥नंदी०॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं ॥४॥

नेवज इन्द्रियबलकार, सो तुमने चूरा ।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा ॥नन्दी०॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ॥५॥

दीपककी ज्योति प्रकाश, तुम तनमांहिं लसै ॥
टूटै करमनकी राश, ज्ञानकणी दरसै ॥ नन्दी० ॥

ओं ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे मोहान्धकार विनाशनाय दीपं ॥६॥

कृष्णागरुधूपसुवास दशदिशिनारि वरै ।
अति हरषभाव परकाश, मानों नृत्य करै ॥ नन्दी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे अष्टकर्मदहनाय धूपं ॥ ७ ॥

बहुविधफल ले तिहुंकाल, आनंद राचत हैं ।
तुम शिवफल देहु दयाल, तो हम जाचत हैं ॥ नन्दी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे मोक्षफलप्राप्तये फलं ॥ ८ ॥

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपत हों ।
'द्यानत' कीनो, शिवखेत, भूप समरपत हों ॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—कार्तिक फागुन साढ़के, अंत आठ दिनमाहिं ।
नंदीसुर सुर जात हैं, हम पूजै इह ठांहिं ॥ १ ॥

एकसौ त्रेसठ कोड़ि जोजनमहा । लाख चौरासिया एक दिशमें लहा ॥ आठमों द्वीपे नंदीश्वरं भास्वरं । भौन बावन्न प्रतिमा नमो सुखकरं ॥ २ ॥ चारदिशि चार अंजनगिरी राजहीं । सहस चौरासिया एकदिश छाजहीं । ढोलसम गोल ऊपर तले सुंदरं ।

भौन० ॥ ३ ॥ एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी। एक इक लाख जोजन अमल जलभरी ॥ चहुं दिशा चार वन लाखजोजन वरं ॥ भौन० ॥ ४ ॥ सोल वापीनमधि सोल गिरि दधिमुखं। सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं ॥ बावरीकोंन दो माहिं दो रतिकरं। भौन० ॥ ५ ॥ शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे। चार सोले मिले सर्व बावन लहे ॥ एक इक सीसपर एक जिन-मंदिरं। भौन० ॥ ६ ॥ बिंब अठ एकसौ रतनमई सोह ही। देव-देवी सरव नयनमन मोह ही ॥ पांचसै धनुष तन पद्मआसनपरं। भौन० ॥ ७ ॥ लाल नख मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं। स्यामरंग भौंह सिर केश छबि देत हैं ॥ वचन बोलत मनों हंसत कालुष-हरं ॥ भौन० ८ ॥ कोटशशि भानदुति तेज छिप जात है। महा-वैराग परिणाम ठहरात है ॥ बयन नहिं कहैं लखि होत सम्यक-धरं। भौन० ॥ ८ ॥

सोरठा—नंदीश्वर जिनधाम, प्रतिमा महिमाको कहे ॥
'द्यानत' लीनों नाम, यही भगति सब सुख करे ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे दिपञ्चाशज्जि-नालयस्थजिनप्रमिमाभ्य: पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(७१) निर्वाणक्षेत्रपूजा ।

परम पूज्य चौवीस, जिहं जिहं थानक शिव गये।
सिद्ध भूमि निशदीस, मनबचतन पूजा करौं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत, ठः ठः अत्र मम सन्नि-हितानि भवत। वषट्।

गीता छंद ।

शुचि क्षीर दधि सम नीर निरमल, कनकभारीमें भरौं ।
संसारपार उतार स्वामी, जोरकर विनती करौं ॥
सम्मेदगिरि गिरनार चंपा, पावापुरी कैलासकों
पूजों सदा चौवीसजिननिर्वाण भूमिनिवासकों ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं ॥ १ ॥
केशर कपूर सुगंध चंदन सलिल शीतल विस्तरौं ।
भवपापको संताप मेटो, जोर कर विनती करौं ॥ सम्मे० ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो चंदनं ॥ २ ॥
मोतीसमान अखंड तंदुल, अमल आनंदधरि तरौं ।
औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं ॥ सम्मे०
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतान्
शुभफूलरास सुबासवासित, खेद सब मनके हरौं ।
दुखधाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे० ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पुष्पं ॥ ४ ॥
नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं ।
यह भूखदूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे० ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं ॥ ५ ॥
दीपक प्रकाश उजास उज्जल, तिमिरसेती नहिं डरौं ।
संशयविमोहविभरम—तमहर, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे० ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं । ६॥
शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं ।
सब करमपुंज जलाय दीजे, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे० ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं ॥७॥

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चारगतिसों निरवरौं ।
निहचै मुकतफल देहु मोकौं, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे० ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य: फलं ॥८॥

जल गंध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरों ।
'द्यानत' करो निरभय जगततें, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं ॥९॥

अथ जयमाला ।

सोरठा—श्रीचौबीस जिनेश, गिरिकैलाशादिक नमों ।
तीरथ महाप्रदेश महापुरुष निरवाणतैं ॥१॥

चौपाई १६ मात्रा ।

नमों रिषभ कैलासपहारं । नेमिनाथ गिरनार निहारं ॥ वासुपूज्य चंपापुर बंदौं । सनमति पावापुर अभिनंदौं ॥२॥ बंदौं अजित अजितपददाता । बंदौ संभवभवदुखघाता ॥ बंदौं अभिनंदन गण नायक । बंदो सुमति सुमतिके दायक ॥३॥ बंदौं पदम मुकतिपदमाकर । बंदौं सुपार्श आशपासाहर ॥ बंदौं चंदाप्रभ प्रभुचंदा, बंदौं सुविधि सुविधि निधि कंदा ॥४॥ बंदो शीतल अघ तप शीतल । बंदौं श्रियांस श्रियांस महीतल ॥ बंदौं विमल विमल उपयोगी । बंदौं अनंत अनंत सुखभोगी ॥५॥ बंदौं धर्म धर्म बिसतारा । बंदौ शांति शांतिमनधारा ॥ बंदौं कुंथु कुथु रखवालं । बंदौं अरि अरहर गुणमालं ॥ ६ ॥ बंदौं मल्लि काममल चूरन । बंदौं मुनिसुव्रतव्रतपूरन । बंदौ नमि जिन नमित सुरासुर । बंदौ पार्श्व पास भ्रमजगहर ॥७॥ बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर

सिखर सम्मेद महागिरि भूपर ॥ एकबार बंदे जो कोई। ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥८॥ नरगति नृप सुर शक्र कहावे। तिहुं जग भोग भोगि शिव पावे ॥ विघन विनाशक मंगलकारी। गुण विलास बंदो नरनारी ॥ ६ ॥

घता—जो तीरथ जावे पाप मिटावे, ध्यावे गावे भगति करे।
ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुणको बुध उचरे ॥१०॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं।

(७२) देवपूजा।

दोहा—प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुख मोह।
तुम पद पूजा करत हूं, हमपै करुना होहि ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवन् अत्र अवतरअवतर। संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव ! वषट्।

छंद त्रिभंगी।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो तुमपै आयो जल लायो।
उत्तम गंगाजल, शुचि अति शीतल, प्राशुक निर्मल, गुन गायो ॥
प्रभु अंतरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो।
यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै, दया धरो, ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अघतपत निरंतर, अगनि पटंतर, मो उर अंतर, खेद करयौ।
ले बावन चंदन दाहनिकंदन, तुमपदवंदन, हरष धरयौ ॥ प्रभु० ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्‌चत्वारिंशद्‌गुणसहितश्रीजिनेभ्योचन्दनं
औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता, बहुत करे ।
तंदुल गुनमंडित, अमल अखंडित, पूजत पंडित प्रीति धरे ॥प्र०॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्‌चत्वारिंशद्‌गुणसहित अक्षतान ।
सुरनर पशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल, मोहि लिया।
ताकेशरलाऊं फूल चढ़ाऊं, भगति बढ़ाऊं, खोल हिया ॥प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्‌चत्वारिंशंद्‌गुणसहित पुष्पं ।
सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं, भूख सदा हो, मो लागै ।
सद घेवर बावर, लाड्डू बहु धर, थार कनक भर तुम आगै।प्र०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिशंद्‌गुणसहित नैवेद्यं० ॥
अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम दुख पावैं ।
तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप सँभारा, जस गावैं ॥ प्रभु०
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्‌चत्वारिंशद्‌गुणसहित दीपं ॥
इह कर्म महावन, भूल रह्यो जन, शिवमारग नहिं पावत हैं।
कृष्णागरधूपं, अमल अनूपं, सिद्धस्वरूपं, ध्यावत हैं ॥
प्रभु अंतरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो ।
यह अरज सुनीजे, ढील न कीजे, न्याय करीजै दया धरो ॥७॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्‌ चत्वारिंशद्‌गुणसहित धूपं० ॥
सबतैं जोरावर, अंतराय अरि, सुफल विघ्न करि डारत हैं। फल पुंज विविध भर, नयनमनोहर, श्रीजिनवरपद धारत हैं ॥प्रभु०॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्‌चत्वारिंशद्‌गुणसहित फलं० ॥
आठौं दुखदानी, आठनिशानी, तुम ढिग आनी, निवारन हो ।
दीनन निस्तारन, अधमउधारन, 'द्यानत' तारन, कारन हो ॥ प्रभु०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्‌चत्वारिंशद्‌गुणसहित अर्घं ।

अथ जयमाला ।

दोहा—गुण अनंतको कहि सकै, छियालीस जिनराय ।

प्रगट सुगुन गिनती कहूं, तुमही होहु सहाय ॥१॥

एक ज्ञान केवल जिनस्वामी । दो आगम अध्यातम नामी ॥ तीन काल विधि परगट जानी । चार अनंत चतुष्टय ज्ञानी ॥२॥ पंच परावर्तन परकासी । छहों दरबगुनपरजयभासी ॥ सात भंग-वानी परकाशक । आठों कर्म महारिपु नाशक ॥३॥ नव तत्वनके भाखनहारे । दशलच्छनसौं भविजन तारे । ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी । बारह सभा सुखी अकलेशी ॥४॥ तेरहिविधि चारितके दाता चौदह मारगनाके ज्ञाता ॥ पंद्रह भेद प्रमाद निवारी । सोलह भावन फल अविकारी ॥५॥ तारे सत्रह अङ्क भरत भुव । ठारे थान दान दाता तुव ॥ भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन । बीस अंक गणधरजीकी धुन ॥६॥ इकइस सर्व घात विधि जाने । बाइस बंध नवम गुन थाने ॥ तेइस निधि अरु रतन नरेश्वर । सो पूजे चौबीस जिनेश्वर ॥७॥ नाश पचीस कषाय करी हैं । देशघाति छब्बीस हरी हैं ॥ तत्व दरब सत्ताइस देखे । मति विज्ञान अठाईस पेखे ॥८॥ उनतिस अंक मनुष सब जाने । तीस कुलाचल सर्व बखाने ॥ इकतिस पटल सुधर्म निहारे । बत्तिस दोष समाइक टारे ॥९॥ तेतिस सागर सुखकर आये । चोतिस भेद अलब्धि बताये ॥पैंतिस अच्छर जप सुखदाई । छत्तिस कारन रीति मिटाई ॥१०॥ सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें । अड़तिस पद लहि नरक अपुनमें । उनतालीस उदीरन तेरम । चालिस भवन इंद्र पूजें नम ॥११॥ इक-

तालीस भेद आराधन । उदै बियालीस तीर्थंकर मन ॥ तैतालीस बंध ज्ञाता नहिं, द्वार चवालिस नर चौथे महिं ॥१२॥ पैंतालीस पल्यके अच्छर छियालीस विन दोष मुनीश्वर। नरक उदै न छियालिस मुनि धुनि प्रकृति छियालिस नाश दशमगुन ॥ १३ ॥ छियालीस धन राजु सात भुव । अङ्क छियालीस सरसो कहि कुव । भेद छियालीस अन्तर तपवर । छियालीस पूरन गुन जिनवर॥१४॥ अडिल्ल—मिथ्या तपन निवारन चन्द समान हो मोहितिमिर वारनको कारन भान हो ॥ काल कषाय मिटावन मेघ मुनीश हो 'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो ॥१५॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट् चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र भवद्भ्यो पूर्णाऽर्घं निर्वपामि ॥ इति श्रीदेव पूजा समाप्त ।

[७३] सरस्वती पूजा ।

दोहा—जनम जरा मृतु छय करै, हरै कुनय जड़ रीति ।
भवसागरसो ले तिरै, पूजै जिनवचप्रीति ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीवाग्वादिनी ! अत्र अवतर अवतर। संवोषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

त्रिभंगी ।

छीरोदधि गङ्गा, विमल तरंगा, सलिल अभङ्गा, सुखगङ्गा ।
भरि कंचन भारी, धार निकारी, तृषा निवारी, हित चङ्गा ।
तीर्थंकरकी धुनि, गनधरने सुनि, अङ्ग रचे चुनि, ज्ञानमई ।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी, पूज्य भई ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वती देव्यैजलं निर्वपामि ।
करपूर मंगाया, चन्दन आया, केशर लाया, रङ्ग भरी ।
शारदपद बंदौं, मन अभिनंदौं, पापनिकंदौं दाह हरी ॥तीर्थ० ॥२॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वती देव्यै जलं निर्वपामि ।
सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अतिअनुमोदं, चंदसमं ।
बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मातामं ॥तीर्थ० ॥३॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामि ।३।
बहुफूलसुवासं, विमलप्रकाशं, आनंदरासं, लाय धरै ।
मम काम मिटायौ, शील बढ़ायौ, सुख उपजायौ, दोष हरै ॥तीर्थ०
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामि ॥४॥
पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया, मिष्ट महा ।
पूजूं थुति गाऊं, प्रीत बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं, हर्ष लहा ॥तीर्थ०
ओं ह्रीं जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामी ॥६॥
करि दीपक ज्योतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढ़ै ।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक, ज्ञान बढ़ै ॥ती०
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामि० ॥६॥
शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर, खेवत हैं ।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं खेवत हैं ॥तीर्थ०॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामि ॥७॥
बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं ।
मनवांछित दाता मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं ॥तीर्थ॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामि ॥८॥
नयननसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्वलभारी, मोद धरै ।

शुभगंधसम्हारा, बसन निहारा, तुमतर धारा, ज्ञान करै ॥
तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि अंग रचे चुनि, ज्ञानमई ।
सो जिनवरबानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी, पूज्य भई ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामि ॥८॥

जलचंदन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति, फल लावै ।
पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर"द्यानत"सुख पावै ॥तीर्थं॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामि ॥१०॥

अथ जयमाला ।

सोरठा—ओङ्कार धुनिसार, द्वादशांग वाणी विमल ।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै ॥

वेसरी छन्द—पहला आचारांग बखानो। पद अष्टादश सहस प्रमानो। दूजा सूत्रकृतं अभिलाषं। पद छत्तीस सहस गुरु भाषं॥ १ ॥ तीजा ठाना अंग सुजानं। सहस बियालिस पद-सरधानं॥ चौथो समवायांग निहारं। चौसठ सहस लाख इकधारं ॥ २ ॥ पंचम व्याख्याप्रगपति दरशं। दोय लाख अट्ठाइस सहसं॥ छट्ठा ज्ञातृकथा बिसतारं। पांचलाख छप्पन हज्जारं ॥ ३ ॥ सतम उपासकाध्ययनंगं। सत्तर सहस ग्यारलख भंगं। अष्टम अंतकृतंदस ईसं। सहस अठाइस लाख तेईसं ॥४॥ नवम अनुत्तरदस सुविशालं। लाख बानवै सहस चवालं। दशम प्रश्नव्याकरण विचारं। लाख तिरानवै सोल हजारं ॥ ५ ॥ ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं। एक कोड़ चौरासी लाखं। चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं। दो हजार सब पद गुरुशाखं ॥ ६ ॥ द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं। इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं॥ अड़सठ

लाख सहस छप्पन हैं। सहित पंचपद मिथ्या हन हैं॥ ७॥ इक सौ बारह कोड़ि बखानो। लाख तिरासी ऊपर जानो॥ ठावन सहस पंच अधिकाने। द्वादश अंग सर्व पद माने॥ ८॥ कोड़ि इकावन आठहि लाखं। सहस चुरासी छहसौ भाखं साढ़ै इकीस शिलोक बताये। एक एक पदके ये गाये॥ ६॥

घत्ता—जा बानीके ज्ञानमें, सूझै लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हों धोक॥इत्याशीर्वादः॥

(७४) गुरुपूजा।

दोहा—चहुंगति दुखसागरविषै, तारनतरनजिहाज।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज॥ १॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्रावतरावतर संवौषट। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

शुचि नीर निरमल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढ़ाइया।
तिहुं धार तिहुं गतिटार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया॥
भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिव तप तपत हैं।
तिहुं जगतनाथ अराध साधु सु, पूज नित गुणजपत है॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जलं नि०

करपूर चंदन सलिलसौं घसि सुगुरुपद पूजा करौं।
सब पाप ताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल बिस्तरौं॥
भव भोगतन वैराग धार निहार, शिवतप तपत हैं।
तिहुं जगतनाथ अराध साधुसु, पूज नितगुन जपत हैं॥२॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो चन्दनं नि०
झिनवा कमोद सुवास उज्जल, सुगुरुपगतर धरत हैं।
गुनधार औगुनहार स्वामी, बंदना हम करत हैं॥ भव भो० ॥३॥
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्
शुभफूलराशप्रकाश परिमल, सुगुरुपांयनि परत हों।
निरबार मोर उपाधि स्वामी, शील दृढ़ उर धरत हों। भव०॥४॥
ओंह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्य: पुष्पं।
पकवान मिष्ट सलोन सुंदर, सुगुरु पांयन प्रीतिसौं।
कर क्षुधारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसौं ॥भव०॥५॥
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्य: नैवेद्यं।
दीपक उदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजों सदा।
तमनाश ज्ञानउजास स्वामी मोहि मोह न हो कदा। भव० ॥६॥
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो दीपं।
बहु अगर आदि सुगंध खेऊं सुगुण पद पद्महिं खरे।
दुख पुंज काट जलाय स्वामी गुण अछय चितमें धरे॥ भव०७॥
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि०
भर थार पूर बदाम बहुविधि, सुगुरु क्रम आगें धरों।
मंगल महाफल करो स्वामी, जोर कर बिनती करों॥ भव०॥८॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०
जल गंध अक्षत फूल नेवज, दीप धूप फलावली।
'द्यानत' सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली॥ भव० ॥९॥
ओंह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं

अथ जयमाला।

दोहा—कनककामिनी-विषयवश, दीसै सब संसार।
त्यागी वैरागीमहा, साधु सुगुनभंडार ॥ १ ॥
तीन घाटि नव कोड़ सब, बंदो सीस नवाय।
गुन तिन अट्ठाईस लों, कहूं आरती गाय ॥ २ ॥

वेसरी छंद।

एक दया पालैं मुनिराजा, रागदोष द्वै हरन परं। तीनों लोक प्रगट सब देखैं, चारों आराधननिकरं ॥ पंच महाव्रत दुद्धर धारै, छहो दरब जानै सुहितं। सप्तभंगवानी मन लावैं, पावैं आठ रिद्ध उचितं ॥ ३ ॥ नवो पदारथ विधिसों भाखैं, बन्द दशों चूरन शरनं। ग्यारह शंकर जानै मानै, उत्तम बारह व्रत धरनं। तेरह भेद काठिया चूरे, चौदह गुनथाणक लखियं। महाप्रमाद पंचदश नाशे, सोलकषाय सबै नखियं ॥ ४ ॥ बधादिक सत्रह सुतर लाख, ठारह जन्म न मरन मुनं। एक समय उनईस परीषह, बीस प्ररूपनिमें निपुनं ॥ भाव उदीक इकीसों जानै, बाइस अभख न त्याग करं। अहिमन्दिर तेईसों बंदैं, इन्द्र सुरग चौबीस वरं ॥ ५ ॥ पच्चीसों भावन नित भावै, छह सौ अंग उपंग पढैं। सत्ताइसों विषय विनाशै, अट्ठाईसों गुण सु बढैं ॥ शीतसमय सर चौपटवासी, ग्रीषमगिरिसिर जोग धरैं। वर्षा वृक्ष तरैं थिर ठाढ़े आठ करम हनि सिद्ध वरैं ॥ ६ ॥

दोहा—कहो कहाँ लो भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
हेमराज, सेवक हृदय, भक्ति करौ भरपूर ॥७॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधु गुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि।

मैं अल्प बुद्धि जयमाल गाय । भवि जीव शुद्ध लेकी बनाय ।२३।
तुम दया विशाला सब क्षितिपाला तुम गुणमाला कण्ठधरी ।
ते भव्य विशाला तज जग जाला नावत भाला मुक्तिवरी ।

इत्याशीर्वादः ॥

(७७) सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा ।

अडिल्ल छन्द ।

जम्बूद्वीप मझार भरत क्षेत्र सुकहों । आर्यखण्ड सुजान भद्र देशे लहो ॥ सुवर्णगिरि अभिराम सुपर्वत है तहां । पञ्चकोड़ि अरु अर्द्ध गये मुनि शिव जहां ॥१॥

दोहा—सोनागिरिके शीशपर, बहुत जिनालय जान ।
चन्द्रप्रभू जिन आदिदे, पूजों सब भगवान ॥२॥

ओं ह्रीं अत्रवत्रवतर: संवोषटाह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ॥ अत्र मम ऽसन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं ।

अथाष्टक

सारंग छंद—पदमद्रहको नीर ल्याय गंगासे भरके । कनक कटोरी माहि हेम थारनमें धरके । सोनागिरिके शीश भूमि निर्वाण सुहाई पंचकोडि अरु अर्द्ध मुक्ति पहुंचे मुनिराई ॥ चन्द्रप्रभु जिन आदि सकल जिनवर पद पूजो । स्वर्ग मुक्ति फल पाय जाय अविचल पद हूजो ॥

दोहा—सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिनराय ।
तिनपद धारा तीन दे, तृषा हरणके काज ॥

ॐ ह्रीं श्रीसोनागिरि निर्वाणक्षेत्रेभ्यो ॥ जलं ॥१॥

केसर आदि कपूर मिले मलयागिरि चन्दन । परमल अधिकी तास और सब दाह निकन्दन ॥ सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिनराज । ते सुगन्ध कर पूजिये, दाह निकन्दन काज । सुगन्धं ॥२॥

तन्दुल धवल सुगन्ध ल्याय जल धोय पखारो। अक्षय पदके हेतु पुंज द्वादश तहां धारो। सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिन राज। तिन पद पूजा कीजिये, अक्षय पदके काज ॥अक्षतं॥३॥

बेला और गुलाब मालती कमल मंगाये। पारिजातके पुष्प ल्याय जिन चरण चढ़ाये॥ सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिन राज। ते सब पूजों पुष्प ले, मदन विनाशन काज॥ पुष्पं॥४॥

विंजन जो जगमांहि खांडघृत माहि पकाये। मीठे तुरत बनाय हेम थारी भर ल्याये॥ सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिनराज। ते पूजों नैवेद्य ले, क्षुधा हरणके काज॥ नैवेद्यं॥५॥

मणिमग दीप प्रजाल धरौं पंकति भरथारी। जिन मन्दिर तम हार करहु दर्शन नरनारी। सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिन-राज। करों दीपले आरती, ज्ञान प्रकाशन काज॥ दीपं॥६॥

दशविधि धूप अनूप अग्नि भोजनमें डालों। जाकी धूप सुगन्ध रहे भर सर्व दिशालों। सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिनराज धूप कुम्भ आगे धरों, कर्म दहनके काज॥ ७॥

उत्तम फल जग मांहि बहुत मीठे अरु पाके। अमित अनार अचार आदि अमृत रस छाके। सोनागिरिके शीशपर, जेते सब जिनराज। उत्तम फल तिन ले मिलो, कर्म विनाशन काज॥फलं८

दोहा—जल आदिक वसु द्रव्य अघ करके धर नाचो। बाजे बहुत बजाय पाठ पढ़के मुख सांचो। सोनागिरके शीसपर जेते सब, जिनराज। ते हम पूजें अर्घ ले। मुक्ति रमणके काज॥ अर्घं।८।

अडिल्ल छन्द।

श्री जिनवरकी भक्ति सो जे नर करत हैं। फल वांछा कुछ

नाहिं प्रेम उर धरत हैं ॥ ज्यों जगमांहिं किसानसु खेतीको करें। नाज काज जिय जान सु शुभ आपहि झरें ॥ ऐसे पूजादान भक्ति वश कीजिये। सुख सम्पति गति मुक्ति सहज पा लीजिये ॥ पूर्णार्घं ॥ १० ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—सोनागिरिके शीसपर, जिन मन्दिर अभिराम ।
तिन गुणकी जयमालिका, वर्णत आशाराम ॥ १ ॥

पद्धरी छंद ।

गिरि नीचे जिन मन्दिर सुचार । ते यतिन रचे शोभा अपार ।
तिनके अति दीरघ चौक जान । तिनमें यात्री मेलें सुआन ॥ २ ॥
गुमठी छज्जे शोभित अनूप । ध्वज पंकित सोहैं विविधरूप ।
वसु प्रातिहार्य तहां धरे आन । सब मंगल द्रव्यिनकी सुखान ॥३॥
दरवाजोंपर कलशा निहार । करजोर सुजय जय ध्वनि उचार ।
इक मन्दिरमें यतिराजमान । आचार्य विजयकीर्तो सुजान ॥ ४ ॥
तिन शिष्य भागीरथ विबुध नाम । जिनराज भक्ति नहिं और काम॥
अब पर्वतको चढ़ चलो जान । दरवाजो तहां इक शोभमान ॥५॥
तिस ऊपर जिन प्रतिमा निहार । तिन वंदि पूज आगे सिधार ।
वहां दु:खित भुखितको देत दान । याचकजन जहां हैं अप्रमाण ६
आगे जिन मन्दिर दुहूं ओर । जिन गान होत वाजित्र शोर ।
माली बहु ठाढ़े चौक पौर । ले हार कली तहां देत दौर ॥ ७ ॥
जिन यात्री तिनके हाथ मांहि । बखशीस रीझ तहां देत जाहिं ।
दरवाजो तहां दूजो विशाल । तहां क्षेत्रपाल दोउ ओर लाल ॥८॥
दरवाजे भीतर चौक माहिं । जिन भवन रचे प्राचीन आहिं ।

तिनकी महिमा बरणी न जाय । दो कुंड सजलकर अति सुहाय ८
जिन मन्दिरकी वेदी विशाल । दरवाजो तीनों बहु सुढाल ।
ता दरवाजेपर द्वारपाल । ले लकुट खड़े अरु हाथ माल ॥ १० ॥
जे दुर्जनको नहिं आन देय । ते निन्दकको ना दरश देय ॥
चल चन्द्रप्रभूके चौकमाहिं । दालाने तहां चौतर्फ आयं ॥ ११ ॥
तहां मध्य सभामंडप निहार । तिसकी रचना नाना प्रकार ।
तहां चन्द्रप्रभुके दरशपाय । फल जात लहो नरजन्म आय ॥ १२ ॥
प्रतिमा विशाल तहां हाथ सात । कायोत्सर्ग मुद्रा सुहात ।
बंदे पूजें तहां देंय दान । जननृत्य भजनकर मधुरगान ॥ १३ ॥
तार्थेई थेई थेई बाजत सितार । मृदंग वीन मुहचंग सार ।
तिनकी ध्वनि सुनि भवि होत प्रेम । जयकार करत नाचत सुप्रेम॥
ते स्तुतिकर फिर नाय शीस । भवि चल मनो कर कर्म खीस ।
यह सोनागिरि रचना अपार । बरणन करको कवि लहै पार॥१५॥
अति तनक बुद्धि आशासुपाय । बस भक्ति कही इतनी सुगाय ।
मैं मन्दबुद्धि किम लहों पार । बुद्धिवान चूक लीजो सुधार ॥१६॥
दोहा—सोनागिरि जय मालिका, लघुमति कही बनाय ।
पढ़े सुने जो प्रीतिसे, सो नर शिवपुर जाय ॥ १७ ॥

इत्याशीर्वादः ।

(७८) रविव्रतपूजा ।

अडिल्ल ।

यह भवजन हितकार, सु रविवृत जिन कही । करहु भव्य-जन लोग, सुमन देके सही ॥ पूजों पार्श्व जिनेन्द्र त्रियोग लगाय-

के। मिटै सकल सन्ताप मिले निध आपके॥ मति सागर इक सेठ कथा ग्रन्थन कही। उनहीने यह पूजा कर आनन्द लही॥ ताते रविव्रत सार, सो भविजन कीजिये। सुख सम्पति सन्तान, अतुल निध लीजिये। दोहा—प्रणमो पार्श्व जिनेशको, हाथजोड़ शिर नाय। परभव सुखके कारने, पूजा करूं बनाय। एतवार व्रतके दिना यही पूजन ठान। ता फल सुरग सम्पति लहैं, निश्चय लीजे मान॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर तिष्ठ २ ठ: ठ: अत्र मम सन्निहितो।

अष्टक।

उज्जल जल भरके अति लायो रतन कटोरन माहीं। धार देत अति हर्ष बढ़ावत जन्म जरा मिट जाहीं॥ पारसनाथ जिनेश्वर पूजों रविव्रतके दिन भाई। सुख सम्पत्ति बहु होय तुरत ही आनद मंगलदाई॥ ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामोति स्वाहा॥ मलयागिरि केशर अति सुन्दर कुमकुम रंग बनाई। धार देत जिन चरनन आगे भवेआताप नसाई। पारसनाथ०। सुगन्धं। मोती सम अति उज्जल तन्दुल ल्यावो नीर पखारो। अक्षय पदके हेतु भावसो श्री जिनवर ढिग धारो। पारस०। अक्षतं। केला अर मचकुन्द चमेली पारजातके ल्यावो। चुन चुन श्री जिन अग्र चढ़ाऊ मनवान्छित फल पावो। पारस०। पुष्पं। वावर फेनी गोजा आदिक घृतमें लेत पकाई। कञ्चन थार मनोहर भरके चरनन देत चढ़ाई। पारस०। नवेद्यं। मनमय दीप रतनमय लेकर जगमग जोत जगाई। जिनके

वसुविध कर्म हरो ॥ हरि मेरु० धूपं । श्रीफल अंगूर अनार,कारक थार भरों । तुम चरन चढ़ाऊं सार,ताफल मुक्ति वरों ॥ हरि मेरु० फलं । जल आदिक आठ अदोष, तिनका अर्घ करों । तुम पद पूजों गुण कोष, पूरन पद सुधरों ॥ हरि मेरु० अर्घं ।

आरती जोगीरासा ।

जन्मसमय उच्छव करनेको, इन्द्र शची युत धायो । तिहको कछु वरणन करवेको, मेरो मन उमगायो ॥ वुधिजन मोंको दोष न दीजो, थोरो बुद्धि भुलायो। साधू दोष क्षमै सब हीके, मेरी करो सहायो ॥ १ ॥

(छंद कामिनी—मोहन—मात्रा २०)

जन्म जिनराजको जबहि निज जानियों । इन्द्र धरनिन्द्र सुर सकल अकुलानियों ॥ देव देवाङ्गना चलिय जयकारतीं ! शचिय सुरपति सहित करति जिन आरतीं ॥ २ ॥ साजि गजराज हरि लक्ष जोजन तनो । बदन शत बदन प्रति दन्त वसु सोहनो ॥ सजल भरि पूर सरदन्त प्रति धारती । शचिय सुरपति सहित, करति जिन आरती ॥३॥ सरहिं सर पंच दुय एक कमलिनि बनी । तासु प्रति कमल पच्चीस शोभा घनी ॥ कमल दल एकसो आठ विसतारतीं । शचियं सुरपति सहित करत जिन आरतीं ॥४॥ दलहिं दल अप्सरा नाचहीं भावसों । करहिं सङ्गीत जयकार सुर चावसों ॥ तगड़दा तगड़ थई करत पग धारतों । शचियं सुरपति स० ॥५॥ तासु करि बैठि हरि सकल परिवारसों । देहि परदक्षिणा जिनहि जयकारसों ॥ आनि कर शचियं जिन नाथ उर धारतीं । शचियं

सुरपति स० ॥६॥ आनि पांडुकशिला पूर्व मुख थाप जिन । करहिं अभिषेक उच्छाहसो अधिक तिन ॥ देखि प्रभु वदन छवि कोटि रवि वारतीं । शचिय' सुरपति सहित कर० ॥ ७ ॥ जोजनह आठ गम्भीर कलशा बने । चारि चौड़ाई मुख एक जोजन तने ॥ सहस अरु आठ भरि कलश शिर ढारतीं । शचिय' सुरपति सहि० ॥८॥ छत्र मणि खचित ईशान करतारहीं । सनत माहेंद्र दोऊ चमर शिर ढारहीं ॥ देव देवीय 'पुष्पांजलिय डारतीं । शचिय सुरपति सहित करत जिन० ॥ ८ ॥ जलसु चन्दन पुहप शालि चरु ले धरों । दीप अरु धूप फल अर्घ पूजा करों ॥ पिंडिका और नीरांजना वारतीं । शचिय' सुरपति सहित कर० ॥१०॥ कियो शृंगार सब अंग सामानसों । आनि मातहिं दियो वहुरि जिनराजकों ॥ तृपत नहिं होत दृग रूप नीहारतीं । शचिय' सुरपति सहित करत जिन आर० ॥ ११ ॥ ताल मिरदंग धुनि सप्त सुर बाजहीं । नृत्य तांडव करत इन्द्र अति छाजहीं ॥ करत उच्छाहसों निजसु पद धारती। शचिय' सुरपति सहित कर० ॥१२॥ भव्य जन आय जिन जन्म उत्सव करैं। आपने जन्मके सकल पातिक हरैं ॥ भक्ति गुरुदेवकी पार उत्तारतीं। शचिय सुरपति साहत करहिं जिन आरतीं ॥१३॥

घत्ता — जिनवर पद पूजा भावसु हूजा, पूरण चित आनन्द भया। जयवन्त सु हूजौ आसा पूजो, लाल विनोदी भाल नया।

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट् चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्ऽर्हत्परमेष्ठिने पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—मंगल गर्भ समयमें जोय। मंगल भयो जन्ममें जोय।

मंगल दीक्षा धारत जोय। मंगल ज्ञान प्राप्तिमें जोय॥ मङ्गल मोक्ष मगनमें जोय। इन्द्रन कीनों हर्षित होय। जाचूं बार बार हौं सोय। हे प्रभु! दीजे मङ्गल मोय।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

(८२) श्री सम्मेदशिखरपूजाविधान

दोहा—सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उत्कृष्ट सु थान॥ शिखिर सम्मेद सदा नमौ, होय पापकी हान ॥१॥ अगनित मुनि जहं तें गए, लोक शिखिरके तीर। तिनके पद पंकज नमौ, नासे भवकी पीर ॥२॥ अडिल्ल छन्द—है वह उज्वल क्षेत्र सु अति निर्मल सही, परम पुनीत सुठौर महा गुनकी मही॥ सकल सिद्धि दातार महा रमनीक है। वंदौ निज सुख हेत अचल पद देत है ॥३॥ सोरठा—शिखिर सम्मेद महान, जगमें तीर्थ प्रधान है॥ महिमा अद्भुत जान, अलपमती मैं किम कहो ॥ ४ ॥ पद्धरी छन्द—सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है। अति सु उज्वल तीर्थ महान है। करहि भक्तिसो जे गुन गाइकैं। वरहि शिव सुरनर सुख पायकैं॥ ५ ॥ अडिल्ल छन्द—सुर हरि नरपति आदि सुजिन बन्दन करै। भवसागर ते तिरै नहीं भवदधि परैं॥ सुफल होय जो जन्म सु जे दर्शन करैं। जन्म जन्मके पाप सकल छिनमें टरैं ॥६॥ पद्धरी छन्द—श्री तीर्थंकर जिनवर सु बीस। अरु मुनि असंख्य सब गुनन ईस॥ पहुंचे जहं थे केवल सुधाम। तिन सबकौं अब मेरी प्रणाम ॥७॥ गीतका छन्द—सम्मेद गढ़ है तीर्थ भारी सबनको उज्वल करै। चिरकालके जे कर्म लागे दरस ते छिनमें टरै॥ है

परम पावन पुन्य दाइक अतुल महिमा जानिए। है अनूप सरूप गिरिवर तासु पूजा ठानिए ॥ ८ ॥ दोहा—श्रीसम्मेद शिखिर महा, पूजों मनवचकाय ॥ हरत चतुरगति दुःख को, मन वांछित फल दाय ॥ ॐह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अत्रावतराव-तर संवौषट् इत्याह्वाननम् परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठः स्थापनम्परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्। ओंह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्रमम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

अष्टकं।

अडिल्ल छन्द—क्षीरोदधि सम नीर सु उज्जल लीजिये। कनक कलस मैं भरकें धारा दीजिये ॥ पूजौं शिखिर सम्मेद सुमन वचकाय जू। नरकादिक दुःख टरैं अचल पद पाय जू॥ ॐह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं। पयसौं घिस मलयागिर चन्दन ल्याइये। केसर आदि कपूर सुगंध मिलाइये॥ पूजौ शिखिर० चन्दनं। तंदुल धवल सु उज्जवल खासे धोयके। हेम वरनके थार भरौं शुचिहोय कें॥ पूजौं शिखिर०। सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षय पदप्राप्ताय अक्षतं ॥३॥ फूल सुगंध सु ल्याय हरष सौं आन चढ़ायौ। रोग शोक मिट जाय मदन सब दूर पलायौ ॥ पूजौं० पुष्पं ॥ षट् रस कर नैवेद्य कनक थारी भर ल्यायो॥ क्षुधा निवारण हेतु सु पूजौ मन हरषायौ ॥पूजौ शिखिर० नैवेद्यं ॥ लेकर मणिमय दीप सुज्योति उद्योत हो। पूजत होत स्वज्ञान मोह तम नाश हो ॥ पूजौं सिखिर०। दीपं ॥६॥ दस विधि धूप अनूप अग्नि मैं खेवहूं। अष्ट कर्मको

जिन धाम ॥२३॥ तीन लोक हित करत अनूप । मंगल मय जगमें चिद्रूप ॥ चिंतामणी स्वर वृक्ष समान । रिद्ध सिद्ध मङ्गल सुख दान ॥२४॥ पार्श्व और काम सुर धेन। नाना विध आनन्दको देन। व्याध विकार जाहिं सब भाज । मन चिंतै पूरे सब काज ॥२५॥ भवदधि रोग विनाशक होई । जो पद जगमें और न कोई ॥ निर्मल परम धाम उत्कृष्ट । बन्दत पाप भजै अरु दुष्ट ॥२६॥ जो नर ध्यावत पुन्य कमाय । जश गावत पै कर्म नशाय ॥ करै अनादि कर्मके पाप । भजै सकल छिनमें सन्ताप ॥२७॥ सुर नर इन्द्र फणिन्द्र जु सबै । और खगेन्द्र महेन्द्र जु नमै ॥ नित सुर सुरी करै उच्चार । नाचत गावत विविध प्रकार ॥२८॥ बहु विध भक्त करै मन लाय । विविध प्रकार वाजिंत्र बजाय ॥२९॥ द्रुम द्रुम द्रुम बाजै मृदङ्ग । घन घन घंट बजै मुह चङ्ग । झन झन झनिया करै उच्चार । सरसारंगी धुन उच्चार ॥ ३० ॥ मुरली बीन बजै घन मिष्ट । पट हांतुरी स्वरान्वत पुष्ट ॥ नित सुरगण थित गावत सार । सुरगण नाचत बहुत प्रकार ॥३१॥ झननन झननन नूपुर तान । तननन तननन टोरत तान । ता थेई थेई थेई थेई थेई चाल। सुर नाचत निज नावत भाल ॥३२॥ गावत नाचत नाना रङ्ग । लेत जहां शुभ आनंद सङ्ग ॥ नित प्रति सुर जहां बन्दे जाय ॥ नाना विध मङ्गल को गाय ॥३३॥ आनन्द धुन सुन मोर जु सोय । प्रापत व्रतकी अति ही होय ॥ तातैं हमकूं हैं सुख सोई । गिरवर बंदो कर धर दोई ॥३४॥ मारुत मन्द सुगन्ध चलेय । गंधो वृक तहां बरषै सोय ॥ जियकी जात विरोध न होई । गिरवर बंदे कर धर दोई ॥३५॥ ज्ञान चरित तपसा धन होई । निज अनुभौको

ध्यान धरेई ॥ शिव मंदिरको धारै सोई। गिरवर बंदे कर धर दोई ॥३६॥ जो भव बन्दे एक जु वार। नरक निगोद पशू गति टार॥ सुर शिवपदकूं पावै सोय। गिरवर बंदे कर धर दोय ॥३७॥ ता की महिमा अगम अपार। गणधर कबहूं न पावैं पार॥ तुम अद्भुत मैं मतिकर हीन। कहो भक्त वसु केवल लीन ॥३८॥ घत्ता—श्री सिद्ध क्षेत्र अति सुख देत॥ सेवतु नासौ विघ्न हरा॥ अरु कर्म बिनाशे सुक्ख पयासे केवल भासे सुक्ख करा॥ ३९ ॥ ओं ह्रीं सम्मेदशिखिर सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो महार्घं। दोहा—शिखरसम्मेद पूजो सदा। ममवच तन कर नारि॥ सुर शिवके जे फल लहै, कहते दास जवारि ॥४०॥ इत्यादि आशीर्वादः।

(८३) दीपमालिका विधान।

श्री महावीर पूजा (कवि मनरङ्गजी)

गीता छंद।

शुभनगर कुण्डलपुर सिद्धारथरायके त्रिशलातिया॥तजि पुष्प उत्तर तासु कुक्ष्या वीर जिन जन्मन लिया॥कर सात उन्नत कनक सा तनु बंशवर इक्ष्वाक है॥ द्वे अधिक सत्तरि वरस आउष सिंह चिन्ह भला कहै॥१॥

छंदमालिनी—सो जिनवीर दयानिधिके जुग पाद पुनीत पुनीत करेंगे। जावत मोक्ष न होय हमें शुभ तावत थापन रोज करेंगे। आय बिराजहु नाथ इहां हम पूजिके पुण्य भण्डार भरेंगे। ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय पुष्पांजलि क्षिपेत्॥ पुष्पोंको थालीमें डाले। कनक कुंभसु वारि भरायके। विमल भावविशुद्ध लगायके॥ कर

अष्टक छंद द्रुतविलंब ।

मदेव जिनेश्वर वोरके । चरण पूजत नाशक पीरके ॐ ह्रीं श्रोबीर नाथ जिनेन्द्राय जन्मरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा जलं ॥ १ ॥

परम चन्दन शीतल वासना । करि सुकेशरि मिश्रित पावना ॥
चरमदेव जिनेश्वर वोरके । चरण पूजत नाशक पीरके ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं ॥२॥

धवल अक्षत चाव चढ़ावही । करि सुपुंज महामन भावही ।
चरम० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं ॥ ३ ॥

पुहप माल बनाय हिरायके । जुगतिसो प्रभु पास लियायके ॥
चरमदेव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं ॥४॥

नवल घेबरबाबर लायके । घृतसुलोलित पूव बनायके ।
चरमदेव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीबीरनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगनाशाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

करि अमोलक रत्नमई दिया । जगत ज्योति उद्योतमई किया ॥
चरमदेव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं॥६॥

उठत धूम्र घटावलि जासुते । इम सुधूप सुगन्धित तासुते ॥
चरमदेव० । चरण पूजत० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं ॥७॥

फणसदाड़िम आम्र पके भये । कनक भाजनमें भरके लये ॥

चरमदेव०। ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय मोक्षपद प्राप्तये भलं ॥ ८ ॥

अरघ ले शुभ भाव चढ़ायके। धवल मङ्गलतूर बजायके। चरमदेव०। ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय सर्वसुखप्राप्ताय अर्घं ॥ ८ ॥

अथ पंचकल्याणकं गाथा।

मास आषाढ़ सुदीमे। षष्टीदिन जानि महा सुखकारी।
त्रिसला गरभ पधारे। तुमपद जजत अर्घ सीरी ॥
ॐ ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय आषाढ़ सुदी ६ गर्भकल्याण काय अर्घं ॥

चैत्र त्रयोदशि कारी। तादिन जनमे प्रभाव बिस्तारी ॥
अर्घ महाकर धारी। जजत तिहारे चरण हितकारी ॥
ओं ह्रीं श्रीवीर जिनेन्द्राय चैत्रसुदीतेरसजन्मकल्याणकायअर्घं ॥२॥

दशमी अगहन बदीमें। लखि सबजग अथिर भये वैरागी ॥
प्रभू महाव्रत धारै। हम पूजत होत बड़ भागी ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय अगहनबदी १० तपकल्याणकाय अघ

केवलज्ञानी हूवे। दशमी वैसाख सुदीके माहो।
सकल सुरासुर पूजे। हम इह पद लखि अरघ चढ़ाही ॥
ओं ह्रीं श्रीवीरनाथ जिनेन्द्राय वैसाखसुदी१०ज्ञानकल्याणकाय अर्घं

कार्त्तिक नष्ट कलादिन। पावापुरके गहनते स्वामी ॥
मुकति तिया परनाई। हम चरण पूजि होत बड़ भागी ॥
ओं ह्रीं श्रीचरमदेव महावीर जिनेन्द्राय कार्त्तिकबदी अमावस निर्वाण कल्याणकाय अर्घं ॥ ५ ॥

जयमाला (छन्द झूलना)

वीर जिन धीरधर सिंहपग चिन्हधर तेजतप धरन जयसूर भारी । धर्मकी धुराधर अक्षर बिनु गिराधर परम पद धरन जय मदन हारी । दयाधर सीमधर पंचवर नाम धर अमल छबि धरण जय शरमकारी । पञ्चपरवर्तकी भर्मना ध्वंसिके अचलपद लहत जयजस बिथारी ॥ १ ॥

(छन्द त्रोटक)

जय आनन्दके घनवीर नमों, जय नाशक हौ भवभीर नमों ।
जयनाथ महासुख दायक हो, जमराजबिहंडन लायक हो ॥ २ ॥
जय चरमशरीर गंभीर नमो, जय चर्मतिर्थंकर धीर नमो ।
जय लोक अलोक प्रकाशक हो, जन्मान्तरके दुखनाशक हो ॥ ३ ॥
जय कर्म कुलाचल छेद नमो, जय मोह बिना निरखेद नमो ।
जय पूज्यप्रताप सदा सुथिरा, प्रगटी चहुं ओर प्रशस्त गिरा ॥४॥
तन सात सुहास विथाल नमो कनकाभ महा दशतालनमो ।
शुभमूरति मो मन माहिं बसी, सिगरी तबते भव भ्रांति नसी ॥५॥
जय क्रोध दवानल मेघ नमो, जय त्याग करो जगनेह नमो ।
जय अम्बर छांड़ि दिगम्बर भे, गति अम्बरकी धरि अंमरभे ॥६॥
जय धारक पञ्चकल्याण नमो, जय रोजनमें गुणवान नमो ।
जय पाद गहें गणराज रहैं, सचिनायकसे मुहताज रहैं ॥ ७ ॥
जय औषधि तारण सेत नमो, जय जन्म उधारन हेत नमो ।
जय मूरति नाथ भली दरसी, करुणामय शांति छया करसी ॥८॥
जय सार्थिक नाम सुवीर नमो, जय धर्मधुराधर वीर नमो ।
जय ध्यान महान तुरी चढ़के, शिवखेत लिया अति ही बढ़के ॥९॥

अनुष्टुप—प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः। कुर्वंतु जगतः शान्ति वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥८॥ प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अंत्येष्ठ प्रार्थना।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गति सर्वदार्य्यैः। सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्। सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे। सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥९॥

आर्यावृत्तम—तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं पदद्वये लीनम्। तिष्ठत जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥१०॥

आर्या—अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मये भणियं। तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःक्खक्खयं दिंतु ॥११॥ दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च वोहिलाहो य। मम होउ जगतवन्धव तव जिणवर चरणशरणेण ॥१२॥ (परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

विसर्जन पाठ—ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया। तत्सर्वं पूर्णं मेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥ आव्हानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्। विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैवच। तत्सवं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥३॥ आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम्। ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥४॥

(८७) भाषास्तुति पाठ।

तुम तरण तारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो। श्रीनाभिनन्दन जगत बंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥१॥ तुम आदिनाथ अनादि

सेऊं, सेय पद पूजा करूं । कैलासगिरिपर रिषभजिनवर,पदकमल हिरदे धरूं ॥ २ ॥ तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महा-बली । यह बिरद सुनकर शरण आयो,कृपा कीजे नाथजी ॥३॥तुम चन्द्रबदन सुचन्द्रलच्छन, चन्द्रपुरि परमेश्वरो। महासेननन्दन, जगतबन्दन, चन्द्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥ तुम शांति पांच कल्याण पूजों, शुद्ध मन वच कायजू । दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलायजू ॥ ५ ॥ तुम बाल ब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमलविकाशनो श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥ ६ ॥ जिन तजी राजुल राजकन्या,कामसेन्या—वश करी । चारित्र रथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥ ७ ॥ कन्दर्प दर्प सुसर्प लच्छन कमठ शठ निर्मल कियो । अश्वसेननन्दन जगतबन्दन, सकलसंघ मंगल कियो ॥ ८ ॥ जिन धरीं बालकपने दीक्षा, कमठमान विदारकैं । श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रके पद, मैं नमों शिरधारकैं ॥ ९ ॥ तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जान दया करो । सिद्धार्थनन्दन जगतबन्दन, महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥ छत्र तीन सोहैं सुर नर मोहै, बीनती अबधारिये । कर जोड़ि सेवक, बीनवें प्रभु, आवागमन निवारियो ॥ ११ ॥ अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों । कर जोड़ यों बरदान मांगो, मोक्षफल जावत लहों ॥ १२ । जो एकमाहीं एक राजै, एकमाहिं अनेकनो । इक अनेक की नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरंजनो ॥ १३ ॥ मैं तुम चरणकमलगुणगाय । बहुविधि भक्ति करी मनलाय । जनम २ प्रभु पाऊं तोहि । यह सेवाफल दीजे मोहि ॥१४ ॥ कृपा तिहारी ऐसी होय जनम मरन मिटावो मोय । बारबार मैं बिनती करूं । तुम से ये

भवसागर तरु'॥ १५॥ नाम लेत सब दुख मिट जाय। तुम दर्शन देखो प्रभु आय। तुम हो प्रभु देवनके देव। मैं तो करूं चरण तव सेव॥ १६॥ मैं आयो पूजनके काज। मेरो जनम सफल भयो आज। पूजा करके नवाऊं शीश। मुझ अपराध छमहु जगदीश॥ १७॥

दसवाँ अध्याय

(८८) सुगन्ध दशमी व्रत कथा।

चौपाई—बर्द्धमान बंदो जिनराय। गुरु गौतम बंदो सुखदाय॥ सुगन्ध दशमी व्रतकी कथा। बर्द्धमान सु प्रकाशी यथा॥ १॥ मगधदेश राजगृह नाम। श्रेणिक राज करे अभिराम॥ नाम चेलना गृह पटरानि। चन्द्ररोहिणी रूप समान॥२॥ नृप बैठो सिंहासन परे। बनमाली फल लायो हरे॥ कर प्रणाम बच नृपसे कहो। चित्त प्रमोदसे ठाड़ो रहो॥३॥ बर्द्धमान आये जिन स्वामि। जिन जीतो उद्यम अरि काम॥ इतनी सुनत नृपति उठ चलो। पुरजन युत दलबलसे भलो॥४॥ समोशरण बन्दे भगवान। पूजा भक्ति धार बहुमान॥ नरकोठा बैठो नृपजाय। हाथ जोड़ पूछे शिर नाय॥५॥ सुगन्ध दशमी व्रत फल भाषि। ता नरकी कहिये अब साखि॥ गणधर कहैं सुनों मगधेश। जम्बूद्वीप विजयार्द्ध देश॥६॥ शिव मन्दिर पुर उत्तरश्रेणी। विद्याधर प्रीत कर जैनी॥ कमलावती नारि अति रूप। सुरकन्तासे अधिक अनूप॥ सागरदत्त

बसे तहां साह । जाके जिनव्रतमें उत्साह ॥ धनदत्त बनिकौ गृह कही । मनोरमा ता पुत्री सही ॥ ८ ॥ सु गुप्तचार्य गृह आइयो । देख मुनीन्द्र दुःख पाइयो ॥ कन्या मुनिकी निन्दा करी । कुछ मनमें नहिं शङ्का धरी ॥९॥ नग्न गात दुर्गन्ध शरीर । प्रगट पने देही नहिं चीर । मुख ताम्बूल हतो मुनि अङ्ग । मानो सु खको कीनो भङ्ग ॥ १० ॥ भोजन अन्तराय जब भयो । मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो ॥ समताभाव धरे उरमांहि । किञ्चित् खेद चित्तमें नाहिं ॥११॥ जीत अवधि समय कछु गयो । मनोरमाका काल सु भयो। भई गधी पुनि कुकरी ग्राम । अपर ग्राम भई सूकरी नाम ॥ १२ ॥ मगध सुदेश तिलकपुर जान । विजय सेन तहंका नृप मान ॥ चित्ररेखा ता रानी कहीं । ता पुत्री दुर्गन्धा भई ॥ १३ ॥ एक समय गुरुबन्दन गयो । पूजा कर विनतीको ठयो ॥ मो पुत्री दुर्गन्ध शरीर । कहो भवान्तर गुण गम्भीर ॥ १४ ॥ राजा बचन मुनीश्वर सुने । मुनि वृतान्त रायसे भने ॥ सब वृतान्त हालिजो जान मुनि राजासे कहो बखान ॥ १५ ॥ सुन दुर्गंधा जोड़े हाथ । मो पर कृपा करो मुनिनाथ । ऐसा व्रत उपदेशो मोहि । यासे तनु निरोग अब होहि ॥१६॥ दयावन्त बोले मुनिराय । सुन पुत्री व्रत चित्त लगाय ॥ समता भाव चित्तमें धरो । तुम सुगन्धदशमी व्रत करो ॥१७॥ यह व्रत कीजे मन वच काय । यासे रोग शोक सब जाय ॥ दुर्गंधा विनवे निकुताय । कहिये सविधि महा मुनिराय ॥ १८ ॥ ऐसे वचन सुने मुनि जबै । तब बोले पुत्री सुन अबै ॥ भादों शुक्ल पक्ष जब होय । दशमो दिन आराधो सोय ॥ १९ ॥ चारो रसकी धारा देव । मनमें राखो श्रीजिनदेव ॥ शीतलनाथकी

पूरण करो । उद्यापन विधिसे आचरो ॥ २१ ॥ अन्तकाल वे कन्या चार । सुमिरण करो पञ्च नवकार ॥चारों मरण समाधि सु कियो । दशवें स्वर्ग जन्म तिन लियो ॥२२॥ षोड्स सागर आयु प्रमाण । धर्म ध्यान सेवें तहां जान ॥ सिद्ध क्षेत्रमें कर विहार । क्षायक सम्यक उदय अपार ॥ २३ ॥ सुभग अवन्ती देश विशाल । उज्जैनी नगरी गुणमाल ॥स्थूलभद्र नामा नरपती । रानी चार सो अति गुणवती ॥ २४ ॥ देव गर्भमें आये चार । ता रानीके उदर मझार प्रथम सुपुत्र देवप्रभु भयो । दूजो सुत गुणचन्द्र भाषियो ॥ २५ ॥ पद्मप्रभा तीनों बलवीर । पद्म स्वारथो चोथो धीर ॥ जन्म महोत्सव तिनको करो । अशुभ दोष ग्रह दोनो हरो ॥ २६ ॥ निकल प्रभा राजाकी सुता । ते चारो परणी गुण युता ॥ प्रथम सुता सो ब्राह्मी नाम । दुतिय कुमारी सो गुणधाम ॥ २७ ॥ रूपवती तीजी सुकुमाल । मृगाक्ष चौथी सो गुणमाल ॥ करो ब्याह घर को आइयो । सकल लोक घर आनन्द कियो ॥ २८ ॥ स्थूलभद्र राजा इक दिना । भोग विरक्त भयो भव तना ॥ राजपुत्रको दीनो सार । वनमें जाय योग शुभ धार ॥ २९ ॥ तपकर उपजो केवल ज्ञान । वसु विधि हनि पायो निर्वाण ॥ अब वे पुत्र राजको करें । पुण्यका फल पावें ते धरें ॥ ३० ॥ चारों बांधव चतुर सुजान । अहि निशि धर्म तनो फल मान ॥ एक समय विरक्त सो भये । आतम कार्य चिन्तवत ठये ॥ ३१ ॥ चारों बान्धव दिक्षा लई । वनमें जाय तपस्या ठई ॥ निज मनमें चिद्रूप आराधि । शुक्ल ध्यानको पायो साधि ॥ ३२ ॥ सर्व विमल केवल ऊपनो । सुख अनन्त तबही सो ठनो ॥ करो महोत्सव देव कुमार । जय जय शब्द भयो तिहि

कार ॥ ३३ शेष कर्म निर्बल तिन करे। पहुंचे मुक्तिपुरीमें बरे। अगम अगोचर भव जल पार। दशलक्षण व्रतके फल सार ॥ ३४ ॥ वीर जिनेश्वर कही सु आन। शीतल जिनके बाढ़े मान। गौतम गणधर भाषी सार। सुनि श्रेणिक आये दरबार ॥३५॥ जो यह व्रत नरनारी करे। ताके गृह सम्पति अनुसरे ॥ भट्टारक श्री भूषण धीर। तिनके चेला गुण गम्भीर ॥ ३६ ॥ ब्रह्मज्ञान सागर सुविचार। कही कथा दशलक्षण सार ॥ मन वचतन व्रत पाले जोइ। मुक्ति वारांगणा भोगे सोइ ॥३७। सम्पूर्ण।

(६२) मुक्तावली व्रत कथा।

दोहा—ऋषभनाथके पद नमों, भवि सरोज रवि जान।
मुक्तावलि व्रतकी कथा, कहूं सुनो धर ध्यान ॥ १ ॥

चौपाई—मगध देश देशोंमें प्रधान। तामें राजगृह शुभ थान ॥ राज्य करे तहां श्रेणिकराय। धर्मवन्त सबको सुखदाय ॥ २ ॥ ता गृह नारि चेलना सती। धर्म शील पूरण गुणवती ॥ इक दिन समोशरण महावीर। आयो विपुलाचल पर धीर ॥ ३ ॥ सुन नृप अत्यानन्दित भयो। कुटुम सहित बन्दनको गयो ॥ पूजा कर बैठो सुख पाय। हाथ जोड़ कर अर्ज कराय ॥ ४ ॥ हे प्रभु मुक्तावलि-व्रत कहो। यह कर कौने क्या फल लहो ॥ तब गौतम बोले हर्षाय। सुनों कथा मुक्तावलिराय ॥ ५ ॥ याही जम्बूद्वीप मंझार। भरत क्षेत्र दक्षिण दिशि सार ॥ अङ्गदेश सोहै रमनीक। नगर बसे चम्पापुर ठीक ॥ ६ ॥ नगर मध्य इक ब्राह्मण बसे। नाम सोम शर्म्मा तसु लसे ॥ ता गृह एक सुता जो भई। योवन मद

कर पूरण ठई ॥ ७ ॥ इक दिन देखे श्रीगुरु आवे । नग्न गात लखे निन्दे तवे ॥ अति खोटे दुर्वचन कहाय । बहुत ही ग्लानि चित्तमें लाय ॥८॥ ताकरि महा पाप बांधियो । अवधि व्यतीते मरण जु कियो ॥ नरक जाय नाना दुःख सहे । छेदन भेदन जाय न कहे ॥ ९ ॥ नरक आयु पूरी कर जोइ । भव भ्रमि द्विज गृह पुत्री होइ । निर्नामिका पड़ा तिस नाम । अति दुर्गंधा देह निकाम ॥ १० ॥ कोई ढिग आवे नहिं तहां । क्रमकर बड़ो भई सो वहां ॥ अब पानकर दुःखित महा । झूठन भखे कष्ट अति लहा ॥ ११ ॥ एक दिवस देखे मुनिराय । कर प्रणाम विनवे शिर नाय ॥ कौन पाप मैं कीनों देव । मैं पायो अति दुःख अमेव ॥ १२ ॥ तब मुनिवर पूरव भव कहे । गुरुकी निन्दासे दुःख लहे । तब दुर्गंधा जोड़े हाथ । ऐसा व्रत दीजे मोहि नाथ ॥ १३ ॥ यासे रोग शोक सब जाय । उत्तम भव पाऊं गुरुराय ॥ तब श्रीगुरु बोले हर्षाय। मुक्तावली करौ मन लाय ॥ १४ ॥ तासे सब पाप जर जाय । सुख सम्पत्ति मिले अधिकाय ॥ तब दुर्गंधा कहे विचार । कौन भांति कीजे व्रत सार ॥ १५ ॥ तब मुनिवर इम वचन कहाय । सुनो भेद व्रतका चित लाय ॥ भादों सुदी सप्तम दिन होइ । ता दिन व्रत कीजे भवि लोइ ॥ १६ ॥ प्रात समय जिन मन्दिर आय । पूजा कथा सुनो मन लाय ॥ सब आरम्भ तजो दिन मान । संयम शील सजो गुणखान ॥ १७ ॥ भोर भये जिन दर्शन करो । शुद्ध भसन कीजे तब खरो ॥ दूजो व्रत पूर्ववत करो । अश्विन वदि छठि पापनि हरो ॥ १८॥ तीजो व्रत कीजे उर धीर । अश्विन वदि तेरसि सुखकार ॥ कर उपवास पालो गुण रसी । चौथी

अश्विन सुदी ग्यारसो ॥१८॥ पञ्चम व्रत कीजे मन लाय। कार्तिक वदी वारसि सुखदाय ॥ फिर छठवां उपवास सुजान। कार्तिक शुक्ल तीज गुणखान ॥ २० ॥ सप्तम व्रत जिनवरने कहो। कार्तिक सुदि ग्यारसि शुभ लहो॥ फेर करो अष्टम व्रत लोय। मार्गसिर वदि ग्यारसि अब होय ॥२१॥ नवमों व्रत मार्ग सुदी तीज। ये व्रत धर्म वृक्षके बीज ॥ या विधि करौ नव वर्ष प्रमाम। मन वच काय शुद्धता ठान ॥ २२ ॥ जब व्रत पूरण होय निदान। उद्यापन कीजे गुणवान ॥ श्रीजिनवर अभिषेक कराय। करो माडनो जिनगृह जाय ॥ २३ ॥ अष्ट प्रकारी पूजा करो। जन्म २ के पातक हरो ॥ यथाशक्ति उपकरण बनाय। श्रीजिन धाम चढ़ावो जाय ॥ २४ ॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। तो दूनो व्रत कीजे लोय ॥ सब विधि सुन दुर्गंधा वाल। मन वच तन व्रत लीनो हाल ॥ २५ ॥ गुरु भाषित तिन व्रत ये कियो। पूर्व भव अघ पानी दियो ॥ ता फल नारि लिङ्ग छेदियो। सौधर्म स्वर्ग देव सो भयो ॥ २६ ॥ तहां आयु पूरण कर सोय। चलत भयो मथुराको लोय ॥ श्रीधर राजा राज करन्त। ताके सुत उपजो गुणवन्त ॥ २७ ॥ नाम पद्मरथ पंडित भयो। एक दिवस वन क्रीड़ा गयो ॥ गुफा मध्य मुनिवर को देख। बन्दन कर सुन धर्म विशेष ॥ २८ ॥ तहां पूछ मुनिवरसे सोय। तुमसे अधिक प्रभा प्रभु कोय ॥ तब मुनिवर बोले सुन वाल। वासपूज्य जिन दीप्त विशाल ॥ २८ ॥ चम्पापुर राजा जिनराज। तेज पुञ्ज प्रभु धर्म जहाज ॥ यह सुन धर्म धिये चित्त दयो। समोशरण जिन बन्दन गयो ॥ ३० ॥ नमस्कार कर दीक्षा लई। तप कर गणधर पदवी भई ॥ अष्ट कर्म हन विधिसे बार।

पहुंचो शिवपुर सिद्ध मंझार ॥ ३१ ॥ कहो भव्य व्रतको सो प्रभाव । राज भोगि भयो शिवपुर राय ॥ जो नर नारि करे व्रत सार । सुर सुख लहि पावे भव पार ॥ ३२ ॥

(६३) पुष्पांजलि व्रत कथा ।

दोहा—वीर देवको प्रणमि कर, अर्चा करों त्रिकाल ।
पुष्पांजलि व्रतकी कथा, सुनो भव्य अघटाल ॥

चौपाई—पर्वत विपुलाचलपर आय । समोशरण जिनवरका पाय । तहां सुन राजा श्रेणिकराय । वन्दन चले प्रियायुत भाय ॥२॥ वन्दन कर पूछे नृप तवे। हे प्रभु पुष्पांजलि व्रत अवे ॥ मोसे कहो करों चित लाय । कोने करो कहा भई आय ॥ ३ ॥ बोले गौतम वचन रसाल । जम्बू द्वीप मध्य सो विशाल । सीता नदी दक्षिण दिशि सार । मंगलावती सुदेश अपार ॥४॥

दोहा—रत्न संचयपुर तहां, वज्रसेन नृप आय ।
जयवंती वनिता लसे, पुत्र विहानी थाय ॥५॥

चौपाई—पुत्र चाह जिन मन्दिर गई । ज्ञानोदधि मुनि वंदित भई ॥
हे मुनिनाथ कहो समझाय । मेरे पुत्र होइके नाय ॥६॥

दोहा—मुनि बोले हे वालकी, पुत्र होय शुभ सार । भूमि छह खंड सुसाधि है,मुक्ति तनो भरतार ।७। सुनके मुनिके वचन तब, उपजो हर्ष अपार । क्रमसे पूरे मास नव, पुत्र भयो शुभ सार ॥८॥ यौवन वयस सो पायके, क्रीडा मण्डप सार । तहां व्योमसे आइयो खग भूप रति सवार ॥६॥ रत्नशेखरको देखकर, बहुत प्रीति उर माहि । मेघवाहनने पांच सो, विद्या दीनीं ताहि ॥१०॥

एकासन कर लोय ॥४२॥ फल उपवास सहस्र दश होइ। अब तीजो दिन सुनिये लोइ जिन पूजा कर पात्रहि दान। भोजन पानी भात प्रमान।४३। नाम त्रिलोकसार दिन कहो। साठ लाख प्रोषध फल लहो॥ चतुर्थ दिन कर आमौदर्य। नाम चतुर्मुख दिनसोहर्य ॥४४॥ तहां उपवास लक्ष फल होइ। पञ्चम दिन विधि करियो सोइ॥ जिन पूजा एकासन करो। इय लक्षण जु नाम दिन धरो ॥ ४५ ॥ फल चौरासी लक्ष उपास। जासे जाय भ्रमण भव नास॥ षष्टम दिन जिन पूजा दान। भोजन भात आमिली पान ॥ ४६ ॥ ता दिन नाम स्वर्ग सोपान। व्रत चालीस लक्ष फल जान॥ सप्तम दिन जिन पूजा दान। कीजे भविजनका सन्मान ॥ ४७ ॥ सब सम्पति नाम दिन सोइ। भोजन भात त्रिवेली होय॥ फल उपवास लक्षकों जान। अष्टम दिन व्रत चितमें आन ॥ ४८ ॥ कर उपवास कथा रुचि सुनो। पात्र दान दे सुकृत गुनो॥ इन्द्रध्वजवृत दिन तस नाम। सुमिरो जिनवर आठों जाम।४९। तीन करोड़ अति लाख पचास। यह फल होय हरे सब त्रास॥ यह विधि आठ वर्षमें होइ। भाव सहित कीजे भवि लोइ।५०। उत्तम सात वर्ष विधि जान। मध्यम पांच तीन लघु मान॥ उद्यापन विधि पूर्वक सचो। वेदी मध्य माडनो रचो ।५१। जिन पूजारु महा अभिषेक। चन्द्रोपम ध्वज कलश अनेक॥ छत्र चमर सिंहासन करो। बहुविधि जिन पूजा अघ हरो ॥५२॥ चारों दान सुपात्रहि देउ। बहुत भक्ति कर विनय करेउ। बहु विधि जिन प्रभावना होइ। शक्ति समान करो भवि लोइ।५३। उद्यापनकी शक्ति न होय। तो दूनो व्रत कीजे लोइ॥ जिन

यह ब्रत कीनो अभिराम । तिन पद लयो सुक्खको धाम । ५४ । यह ब्रत पूर्व महा फल लियो । प्रथम ऋषभ जिनवरने कियो ॥ अनन्तवीर्य्य अपराजित पाल । चक्रवर्त्ति पदवी भई हाल । ५५ । श्रीपाल मैना सुन्दरी । ब्रत कर कुष्ट व्याधि सब हरी ॥ बहुतक नर नारी ब्रत करो । तिन सब अजर अमर पद धरो । ५६ । सुनो विधानराय हरसेन । अति प्रमोद मुख जंपे बेन ॥ सब परिवार सहित ब्रत लयो । मुनिवर धर्म प्रीतिकर दयो । ५७ । ब्रत कर फिर उद्यापन करो । धर्म ध्यान कर शुभ पद धरो ॥ अन्त समाधिमरणको पाय । भयो देव हरसेन सुराय । ५८ । पर्यायान्तर जैहैं मुक्ति । श्रेणिक सुनो सकल ब्रत युक्ति ॥ गौतम कहो सकल अधिकार । सुनो मगधपति चित्त उदार । ५९ । जो नर नारी यह ब्रत करें । निश्चय स्वर्ग मुक्ति पद धरैं ॥ संकट रोग शोक सब जाहिं । दुःख दरिद्रता दूर बिलाहिं । ६० । यह ब्रत नन्दीश्वरकी कथा । हेमराज सु प्रकाशी यथा ॥ शहर इटावा उत्तम स्थान । श्रावक करें धर्म शुभ ध्यान । ६१ । सुनें सदा ये जैन पुराण । गुणीजनोंका राखैं मान । तिहिठा सुना धर्म सम्बन्ध । कीनी कथा चौपाई बंध । ६२ । कहैं सुनें देवें उपदेश । लहैं भावसे पुण्य अशेष ॥ जाके नाम पाप मिट जांय । ता जिनवरके बन्दों पांय ॥ ६३ ॥ श्रीनन्दीश्वर ब्रत कथा सम्पूर्णम् ॥

(६६) निशिभोजन कथा ।

दोहा—नमों सारदा सार बुध, करैं हरैं अघ लेप ।

निशि भोजनभुंजकी कथा, लिखूं सुगम संक्षेप ॥ १ ॥

जंबूदीप जगत विख्यात । भरत खंड छवि कहिय न जात ॥ तहां देश कुरु जांगल नाम । हस्तनागपुर उत्तम ठाम ॥ यशो भद्र भूपत गुण वास । रुद्रदत्त द्विज प्रोहित तास ॥ अश्वमास तिथि दिन आराध । पहिली पड़वा कियो सराध ॥ बहुत विनय सों नगरी तने । न्योत जिमाये ब्राह्मण घने ॥ दान मान सबहीकों दियो । आप विप्र भोजन नहिं कियो ॥ इतने राय पठायो दास । प्रोहित गयो रायके पास ॥ राज काज कछु ऐसो भयो । करम करावत सब दिन गयो ॥ घरमें रात रसोई करी । चुल्हें ऊपर हांड़ी धरी ॥ हींग लैन उठि बाहर गई । यहां विधाता औरहीठई । मैंडक उछल परो ता माहि । त्रिया तहां कछु जानो नाहिं । वेंगन-छोंक दिये तत्काल । मैंडक मरो होय बेहाल ॥ तबहुं विप्र नहि आयो धाम । धरी उठाय रसोई ताम ॥ पराधीनकी ऐसी बात । औसर पायो आधी रात ॥ सोय रहे सब घरके लोग । आग न दीवा कर्म संयोग ॥ भूखो प्रोहित निकसे प्रान । ततछिन बैठो रोटी खान ॥ बेगन भोले लीनो ग्रास मेंडक मुंहमें आयो तास ॥ दांतन चले चबा नहिं जबै । काढ़ धरो थालीमें तब ॥ प्रात हुए मैंडक पहिचान । तौ भी विप्र न करी गिलान ॥ तिथि पूरी कर छोड़ी काय । पशुकी योनी उपजो आय ॥

सोरठा छन्द—१ घुघू २ काग ३ विलाव, ४ साबर ५ गिरध्र पखेरुआ । ६ सूकर ७ अजगर भाव, ८ बाघ ९ गोह जलमें १० मगर । दश भव इहि विधि थाय, दसों जन्म नरकहि गयो । दुर्गति कारण पाय, फली पाप बट बीजवत् ।

दोहा—निशि भोजन करिये नहीं, प्रगट दोष अविलोय ।
परभवसब सुख संपजे यह भव रोग न होय ॥

छप्पय (छन्द)

कोड़ी बुध बल हरे, कम्प गद करे कसारी। मकड़ी कारण पाय कोढ़ उपजे दुख भारी। जुआं जलोदर जने फांस गल विथा बढ़ावे। बाल सबे सुरभंग वमन माखी उपजावे॥ तालुवे छिद्र बीछू भखत और व्याधि बहुकरहि सब। यह प्रगट दोष निश असनके परभव दोष परोक्ष फल॥

जो अघ इहि भव दुख करे, परभव क्यों न करेय। डसत सांप पीछे तुरत, लहर क्यों न दुख देय। सुवचन सुन डाहारजे, मूरख मुदित न होय। मणिधर फण फैरे सही, नहीं सांप नहीं होय॥ सुववन सत गुरुके वचन, और न सुवचन कोय। सत गुरु वही पिछानिये,जा उर लोभ न होय॥५॥ भूधर सुवचन सांभलो,स्वपर-पक्ष कर बौन। समुद्र रेणुका जो मिले, तोड़े तें गुण कौन ॥इति

(६७) श्रीरविव्रत कथा

चौपाई—श्रीसुखदायक पार्स जिनेश। सुमति सुगति दाता परमेश॥ सुमिरों शारद पद अरविन्द। तिनकर व्रत प्रगटो सानंद ॥१॥ वाणारस नगरी सुविशाल। प्रजापाल प्रगटो भूपाल॥ मतिसागर तहां सेठ सुजान। ताका भूप करे सन्मान॥ २॥ तासु त्रिया गुणसुन्दरि नाम। सात पुत्र ताके अभिराम॥ षट् सुत भोग करें परणीत। बाल रूप गुण धर सुविनीत॥ ३॥ सहस्रकूट शोभित जिन धाम। आये यति पति वांछित काम॥ सुनि मुनि आगम हर्षित भये। सर्व लोग वन्दनको गये॥ ४॥ गुरु वाणी सुनिके गुणवती। सेठिन तब जो करी वीनती॥ ५॥ करुणा-

निधि भाषैं मुनिराय। सुनो भव्य तुम चित्त लगाय॥ अब आषाढ़ सुदि पक्ष विचार। तब कीजे अंतिम रविवार॥ ६॥ अनशन अथवा लघु आहार। लवणादिक जो करे परिहार॥ नवफल युत पंचामृत धार। वसु प्रकार पूजो भवहार॥ ७॥ उत्तम फल इक्यासी जान। नवश्रावक घर दीजे आन॥ या विधि करो नव वर्ष प्रमाण। याते होय सर्व कल्याण॥ ८॥ अथवा एक वर्ष एक सार। कीजे रविव्रत मनहिं विचार॥ सुन साहुन निज घरको गई। व्रत निन्दासे निन्दित भई॥ ९॥ व्रत निन्दासे निर्धन भये। सात पुत्र अयोध्यापुर गये॥ तहां जिनदत्त सेठ गृह रहे। पूर्व दुःकृतका फल लहैं॥ १०॥ मात पितां गृह दुःखित सदा। अवधि सहित मुनि पूछे तदा॥ दया-वन्त मुनि ऐसे कहो। व्रत निन्दासे तुम दुःख लहो॥ ११॥ सुन गुरु वचन बहुरि व्रत लयो। पुण्य कियो घरमें धन भयो॥ भवि-जन सुनो कथा सम्बन्ध। जहाँ रहते थे वे सव नन्द॥१२॥ एक दिवस गुणधर सुकुमार। घास ले आये गृह द्वार॥ क्षुधा वन्त भावज पे गयो। दंत बिना नहिं भोजन दयो॥ १३॥ बहुरि गये जहां भूलों दन्त। देखो तासे अहि लिपटन्त॥ फणिपतिकी तहां विनती करी। पद्मावति प्रगटी सुंदरी॥ १४॥ सुन्दर मणि-मय पारसनाथ। प्रतिमा पंचरत्न शुभ हाथ॥ देकर कहो कुंवर कर भोग। करो क्षणक पूजा सयोग॥१५॥ आनबिंब निज घरमें धरो। तिहकर तिनको दारिद्र हरो॥ सुख बिलास सेवे सब नन्द। निन प्रति पूजों पार्स जिनेन्द्र॥ १६॥ साकेत नगरी अभिराम। जिन प्रसाद राचा शुभ धाम॥ करी प्रतिष्ठा पुण्य

मूं काला । ये मंत्रोंमें मंत्र निराला,सुखसे पूर पूर पूर॥२॥सब सुन लो जैनी भाई, ये छल है बहु दुख दाई । है निश्चय धरम सहाई, विपदा चूर चूर चूर ॥ ३ ॥ कोई रंचक दगा न करना, छलियासे डरते रहना । सब मनमें सदा सुमरना, जिनका नूर नूर नूर ॥४॥ हे सरल स्वभावी जैनी, इस छलकी धारा पैनी । "विद्या" मत चढ़ये नसैनी, श्रावक शूर शूर शूर ॥ ५ ॥

उत्तम सत्य

जगत में उत्तम सत्य महान !

बुद्धिवान गुणवान ॥जगतमें॥ झूठ बचन नहिं मुखसे बोलो, झूठ महा दुख खान ॥जगतमें०॥ दुनियामें है सत्यकी महिमा, सत्यही मंत्र महान ॥जगतमें०॥ दृढ़ प्रतिज्ञ बन जो सत बोले तो निश्चय कल्याण ॥ जगतमें० ॥ पर विश्वास घात न करना,और न करना मान ॥ जगतमें० ॥ पर वस्तुमें मन न लुभानो, चाहे जावें प्राण ॥ जगतमें० ॥ सत्य सत्य सब नित्य ही सुमरो, गाकर उसका गान ॥ जगतमें० ॥ उत्तम सत्यकी माला जपलो,धरकर हृदे ध्यान ॥जगतमें०॥हाथ जोड़ सब शीश नवावें, दे प्रभु यह बरदान ॥जगत में० ॥ विद्या विनय यही है प्रभुजी, पाऊं उच्च स्थान ॥ जगतमें० ॥

उत्तम शौच

जैनी धारियो जी,उत्तम शौच आज मन भाया ॥टेक॥ दुख दाई लालच दुख देता सुनलो उसका हाल । सच्चे मनसे लोभ त्याग दो ये जीका जंजाल ॥१॥टेक॥ कौन कहत है लोभ बिना तुम,होवोगे कंगाल । दूर हटाओ दिलसे इसको कैसा रही ख्याल ॥२॥ टेक ॥ निर्लोभी बननेकी शिक्षा प्रभुसे लेलो आज । उत्तम शौचकी आप

चाहिये ॥ ४ ॥ नर भव महा दुर्लभ रतन मुश्किलसे "विद्या" है मिला ॥ तो क्या बिना तपके इसे, योंही गमाना चाहिये ॥ ५ ॥

उत्तम त्याग (राग-बंजारा)

मन उत्तम त्याग समाया, नरभव जीवनका पाया । है दान चार परकारा, दे औषधि दान अहारा ॥ टेक ॥ दिल अभय शास्त्र मनभाया, नरभव जीवनका पाया । तप, राग द्वेष, निरवारे, मेरे कर्म शत्रुको मारे । मुनियोंने देह तपाया, मेरे मन त्याग सुहाया ।२॥ ये जीवन बहु दुखदाई; ये विपदा तप बिन आई । क्यों पाप कूप खुदवाया, नर भव जीवनका पाया ॥ ३ ॥ दुनिया भी अन्तमें न्यारी "विद्या" निश्चय है ख्वारी । कह प्रभुसे नेह लगाया, मेरे मन त्याग समाया ॥ ४ ॥

(उत्तम आकिंचन)

(रघुवर कौशल्याके लाल मुनिकी यज्ञ रचाने वाले)

उत्तम आकिंचन व्रतधार जैनी मात्र कहाने वाले । जनी मात्र कहाने वाले, त्यागका रूप दिखाने वाले ॥ १ ॥ त्यागो चौबिस परिग्रह भेद । फिर घर तीरथ सिखर सम्मेद करना अवश्यक नहीं खेद, धर्मकी बाढ़ बढ़ाने वाले ॥ २ ॥ निश्चय जिनवाणी श्रद्धान, जगमें जैनी धर्म प्रधान । कहते बुद्धिवान गुणवान, जग उपदेश सिखाने वाले॥ ३ ॥ ये है दुखदाई संसार, इसमें सुखपाना दुश्वार । जीवके दुश्मन कई हजार, पग पग दुःख दिलाने वाले ॥ ४ ॥ है दुनियां निस्सार जायेंगे सब कोई हाथ पसार । "विद्या" दान चार परकार, मुक्तिकी राह बताने वाले ॥ ५ ॥

नोट—श्री मती विद्यावती कृत "विद्याविनोद" नामक बड़ा संग्रह अलग तैयार हो रहा ।

वह जिय जाने, या प्रभु केवल ज्ञानी ॥ कुछ शुभ भावन कर या जियने, सुरगति सुन्दर पाई। पर मन इच्छित सुख नहिं पायो, दुख पायो अधिकाई ॥ रंक भयो, लख सम्पत परकी, झुर झुर बदन झिरायो। देख २ सुख भोग पराये, कर चिन्ता, दुख पायो ॥ बहु दुख माना, चिन्ता कीनी, रुदन किया दुःखदाई। जब मृत्युसे मास छः पहिले, गलमाला मुरझाई ॥ हा हा! यह सुख भोग छुटेंगे अब होगी थिति पूरी। इच्छा मनकी पूरी नाहीं, रह गई हाय अधूरी ॥ कोई पुन्य उदय जब आयो, तब मानुष गति पाई। कर्म उदय कर या गति मांहो, कष्ट अनेक लहाई ॥ पुत्र बिना दुखिया नर कोई, चिन्तत मनमें ऐसे। मम धन संपति कौन भोगवै, नाम चलेगा कैसे ॥ होत पुत्र मरजाय दुखी तब, यह कह रुदन मचावे। जो ना होता तो अच्छा था, कष्ट सहा नहिं जावें ॥ जोयो पुत्र भयो दुर्व्यसनी धन सम्पति सब खोयो। अब दुख मानत मातपिता सब, कुलका नाम डुबोयो ॥ मित्र स्वारथी स्वारथ सावन कर आंखें दिखलावे। बैरी बनकर धन यश प्राणन, का ग्राहक बन जावै ॥ कुलटा नारी कहल कारणी, कर्कश बचन उचारें। दोऊ कुलकी लाज गंवावे, पतिको विष दे मारे ॥ वेश्यागामी, परतिय लम्पट, ज्वारी, मांसाहारी। मद मतवाले पतिसे दुखिया हैं पतिबरता नारी ॥ पुत्र पिता पर अरि सम टूटे, चाहे यह मर जावै। पिता पुत्र पर रुष्ट होय कर, घर से दूर करावे ॥ भाई भाई लड़त स्वान सम, हैं प्राणनके लेवा। धार कषाय उपाधि मचावे, हैं दोऊ दुख देवा ॥ विधवा नारि पती बिन दुखिया बिन नारी पति कोई। कोई बाला वृद्ध पती पा,

ऐसा कहिये, नास न जाको होई ॥ जल बुद् बुद्वत् जीवन जगमें, आस नहीं इक दिनकी । काल बली मुख खोलत जौहै, बाट एक पल छिनकी ॥ फिर जगमें, किससे मोह कीजे, कौन बस्तु थिर कहिये । ऐसे जग जंजाल जालमें, फँसकर बहु दुख लहिये ॥ कूए भांग पड़ीको पीकर, सबने सुध बुध खोई । उत्तम नर भव क्षेत्र पायकर, बेल न सुखकी बोई ॥ धर्म साध, परहित नहिं कीना, योंही जन्म गँवाया । मूढ़ पुरुषने रत्न अमोलक, सागर बीच डुबाया ॥ सुख चाहत भी सुख नहिं पावत, दुख पाव संसारी । याका कारण, मोह अज्ञता, अरु मिथ्यात दुखारी ॥ जो चाहे सुख, जिय संसारी, आपा परको जान । हित अनहित अरु पाप पुन्यका, सभी भेद पहिचानै ॥ विश्व प्रेम हिरदय बिच धारै, पर उपकारी होवै । पाप पंक आतम पर लागो संजम जलसे धोवै ॥ दर्शन; ज्ञान, सु चारित्र पालै, इच्छा भाव घटावै । पंच महाव्रत धारण करके, जगसे मोह हटावै ॥ यह जग वस्तु समस्त विनासैं, इनसे ममता त्यागै । आतम चिंतवन कर, निजमनमें, आतम हितमें लागै ॥ मैं आतम परमातम, चिद् आनन्द रूप सुख रूपी । अजर अमर गुण ज्ञान शांतिमय हूं आनंद स्वरूपी ॥ यह तन रूप स्वरूप न मेरो, मैं चेतन अविनाशी । ज्ञाता दृष्टा सुख अनन्त मय, हूं शिवपुर का वासी ॥ मेरी केवल ज्ञान ज्योतिसे, भरम तिमर नस जावे । मैं ऐसा शुद्धात्म, चिदानन्द, जब यह जीव लखावे ॥ तब ही कर्म कलंक विनासे, जीव अमर पद पावै । मिले निराकुल सुख अविनाशी, परमातम कहलावै ॥ आवे कब वह शुभ दिन जब मम, ज्ञान "ज्योति" जग जावै । सत्य अमर आतम को पाकर, मम जियरा सुख पावै ॥

दोहा—मेरी है यह भावना, सुख पावे संसार ।
मिले निराकुलता मुझे, हो आनन्द अपार ॥